रहिमन पानी बिक रहा सौदागर के हाथ

भारत में पानी के निजीकरण और
कम्पनीकरण के बुनियादी मुद्दे

श्रीपाद धर्माधिकारी

मंथन अध्ययन केंद्र

रहिमन पानी बिक रहा सौदागर के हाथ

(भारत में पानी के निजीकरण और कंपनीकरण के बुनियादी मुद्दे)

लेखक : श्रीपाद धर्माधिकारी

अनुवाद : ईश्वर सिंह दोस्त

संपादन व ले आउट : सुशील जोशी

प्रकाशक : मंथन अध्ययन केंद्र
दशहरा मैदान रोड़,
बड़वानी (म.प्र.) 451 551
फोनः 07290-222587
ई-मेलः manthan.kendra@gmail.com
वेबसाईटः manthan-india.org

अंग्रेज़ी संस्करण : नवंबर 2002

हिंदी संस्करण : दिसंबर 2003/ 2000 प्रतियाँ

हिंदी दूसरी आवृत्ति : दिसंबर 2013/ 1000 प्रतियाँ

आवरण डिज़ाइन : श्रीपाद धर्माधिकारी

आवरण का चित्रः अजित गावणेकर द्वारा लिए गए नर्मदा नदी के चित्र पर आधारित

फोटोग्राफ्सः टॉम क्रूज़, अमन नम्र

सहयोग राशिः 10 रुपए
(केवल निजी वितरण हेतु)

मंथन अध्ययन केन्द्र

संसाधनों के उपयोग एवं विकास संबंधी गतिविधियों ने सामाजिक न्याय, समानता, पर्यावरण सुरक्षा, मानवाधिकार आदि मुद्दों पर उग्र बहस एवं तीव्र संघर्ष खड़े किए हैं। इससे मौजूदा विकास के मॉडल की उपयोगिता पर गंभीर चिन्ताएँ पैदा हुई है। पिछले वर्षो में वैश्विक तथा राष्ट्रीय आर्थिक एवं वित्तीय ढाँचों में बड़े पैमाने पर किये गये बदलावों ने इन चिन्ताओं को और भी प्रासंगिक बनाया है।

जो लोग सार्वजनिक नीतियों से जुड़े कार्य कर रहे हैं उन्हें इन बदलावों को समानता, मानवाधिकार, पर्यावरण आदि की चिन्ताओं के साथ पूरी तरह समझने की आवश्यकता है। लेकिन अभी तक अधिकांश जानकारियों के स्त्रोत एवं उनकी विश्लेषणात्मक क्षमता सरकारी, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय एजेंसियों या निजी संगठनों के पास ही है। जनहित के लिये प्रतिबद्ध ऐसे स्वतंत्र संगठन बेहद जरूरी है जो उच्च गुणवत्तापूर्ण शोध एवं विश्लेषण कर सके। **मंथन** की स्थापना इसी जरूरत को पूरा करने का एक प्रयास है।

भाखड़ा–नंगल बाँध का विस्तृत मूल्यांकन, विश्व बैंक के ज्ञानदाता की भूमिका का विश्लेषण और जन–निजी भागीदारी के प्रभावों का अध्ययन आदि इसके अभी तक के प्रमुख कार्य है। साथ ही जल क्षेत्र में व्यावसायीकरण व निजीकरण संबंधी पड़ताल भी सतत जारी है।

प्रस्तावना

पानी का निजीकरण देश में एक चिंता का विषय बनता जा रहा है।

विश्व बैंक-आईएमएफ द्वारा थोपे गए ढांचागत समायोजन कार्यक्रम (जिसे एलपीजी, उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण भी कहते हैं) के तहत 1991 में भारतीय अर्थव्यवस्था क्या खुली, एक के बाद दूसरे क्षेत्र निजीकरण के लिए खोले जाने लगे। दरअसल यही सारी दुनिया में हो रहा है। जल क्षेत्र निजीकरण के सबसे ताजे निशाने के रूप में उभरा है। वैसे दक्षिण अमेरिका और दक्षिण पूर्व एशिया में पानी का बड़े पैमाने पर निजीकरण एक दशक से चल रहा है।

जब भारत में बिजली क्षेत्र को निजीकरण के लिए खोला गया था, तब कोई बहस या चर्चा नहीं हुई थी। देश के सामने इसे एक निर्विवाद तथ्य, संपन्न कार्य की तरह परोसा गया था। बड़े पैमाने पर बिजली गुल होने का डर दिखाकर निजीकरण को आगे बढ़ाया गया। नतीजा सबके सामने है। सरकारी तौर पर भी कबूला जा चुका है कि सुधार औंधे मुंह गिरे हैं और राष्ट्र को भारी कीमत चुकानी पड़ी है।

और अब पानी के क्षेत्र में ऐसे ही निजीकरण की राह पकड़ी जा रही है। हम महसूस करते हैं कि इस पर चुप बैठना मुनासिब नहीं है। किसी भी बड़े निर्णय के पहले इस मुद्दे पर व्यापक आम बहस होना चाहिए।

यह पुस्तिका इसी उद्देश्य से तैयार की गई है। इस पुस्तिका में विभिन्न स्त्रोतों से मिली सूचनाएं इकट्ठी करके भारतीय संदर्भ में

उनकी व्याख्या की गई है। हम इन बहुत से स्रोतों के शुक्रगुज़ार हैं। इन सभी का नाम यहां नहीं दिया जा सका है।

हम उन दोस्तों और सहकर्मियों के भी आभारी हैं, जिन्होंने सूचनाएं जुटाने में मदद की, मसौदे पर अपनी राय रखी और साज-सज्जा में हाथ बंटाया। विशेषकर क्लिफ्टन, जयश्री जनार्दन, माधुरी, नंदिनी ओझा, राकेश दीवान, रेहमत, सुकुमार, शशांक, हिमांशु ठक्कर व मंथन के सहकर्मियों स्वाति शेषाद्रि और मुकेश जाट का मैं शुक्रिया अदा करना चाहता हूं। मैं कोचाबम्बा के टॉम क्रूज़ का विशेष रूप से आभारी हूं, जिन्होंने अपने कोचाबम्बा (बोलीविया) के पानी युद्ध के शानदार फोटो के इस्तेमाल की इजाज़त दी, साथ ही अमन नम्र का जिन्होंने छत्तीसगढ़ में शिवनाथ नदी के निजीकरण से सम्बंधित फोटो मुहैया कराया।

पुस्तिका का हिंदी अनुवाद ईश्वर सिंह दोस्त ने किया है। उम्मीद है कि हिंदी में उपलब्ध हो जाने से इस पूरी बहस में नए लोग जुड़ेंगे।

सहयोग इन सबका व कई अन्य लोगों का रहा लेकिन निश्चित ही, किसी भी अनजानी चूक के लिए जिम्मेदारी मेरी ही है।

इस दस्तावेज के पीछे हमारा इरादा भारत में पानी के निजीकरण के मुद्दे पर एक सोच खड़ी करना और कुछ बुनियादी आंकड़े उपलब्ध कराना है। नए-नए तथ्य व आंकड़े मिलने पर इस दस्तावेज में जुड़ते जाएंगे।

हमें उम्मीद है कि यह पुस्तिका इस मुद्दे पर जानकारी बढ़ाने और एक बहस खड़ी करने में मददगार साबित होगी।

दिसंबर 2003

श्रीपाद धर्माधिकारी
मंथन अध्ययन केन्द्र,
बड़वानी (म.प्र.)

कोचाबम्बा का पानी युद्ध

बोलीविया में समुद्र तल से 2,558 मीटर ऊंची एक उपजाऊ घाटी में बसा हुआ है सुंदर शहर कोचाबम्बा। यह तुनारी पर्वत, अलालै लैगून और सैन सेबेस्टियन पर्वत से घिरा हुआ है। 1999 के पहले तक शायद ही ज़्यादा लोगों ने कोचाबम्बा के बारे में सुना हो। तब तक इस शहर की कभी चर्चा होती भी थी तो यीशू मसीह की एक विशाल मूर्ति 'एलक्रिस्टो डे ला कन्कोर्डिया' की वजह से, जो ब्राजील के रियो डि जेनेरो में खड़ी मूर्ति 'क्रिस्टो डेल कोरकोवाडो' से भी ऊंची है।

लेकिन 1999 में शुरू हुई एक ऐसी कहानी, जिसने कोचाबम्बा को एक अलग ही तरह का यश (या अपयश) दिलाया। इस साल शहर का समूचा पानी आपूर्ति तंत्र एगुअस डेल तुनारी नामक निजी कंपनियों के एक संघ के हवाले कर दिया गया, जिसकी अगुवाई अमेरिकी कंपनी बेक्टेल कर रही थी। तब शहर का जल प्रदाय तंत्र अव्यवस्था का शिकार था। पानी की ज़बर्दस्त किल्लत थी और गरीब मोहल्लों में पानी के नल नहीं थे। ऐसी कई समस्याओं के समाधान के लिए पानी आपूर्ति के निजीकरण को अलादीन के चिराग की तरह पेश किया गया। शहर में जल आपूर्ति सुधारने के इरादे से बुलाई गई एगुअस डेल तुनारी को असाधारण रियायतें दी गई, ताकि वह शहर में पैसा लगाने में रुचि दिखाए।

12,500 करोड़ रुपए की रियायत अनुबंध (concession agreement)[1] चालीस सालों के लिए थी। साथ ही कंपनी को पूंजी निवेश पर 15 % लाभ की गारंटी दी गई और इसे अमेरिका के उपभोक्ता कीमत सूचकांक से जोड़ा गया। अनुबंध के तहत कंपनी को ज़िले के सभी तरह के जल स्रोतों पर पूरा अधिकार भी दिया गया। तत्काल नतीजा यह हुआ कि पानी के दाम दुगने और फिर तिगुने हो गए। कोई 5 साल पहले शहर के बाहरी हिस्सों के कुछ मोहल्लों ने अपने खुद के सहकारी पानी आपूर्ति तंत्र, यानी साझे ट्यूबवैल और नलके, खड़े कर लिए थे। एगुअस डेल तुनारी को न सिर्फ इन साझे जल स्रोतों पर मीटर लगाने का बल्कि मीटर लगाने का खर्च लोगों से वसूलने का अधिकार दे दिया गया।

तेज़ बढ़ती दरों का नतीजा यह हुआ कि औसतन एक मज़दूर के वेतन का 25 फीसदी हिस्सा पानी के मासिक बिलों की भेंट चढ़ने लगा। जैसे-जैसे दरें बढ़ी कंपनी ने बिना किसी झिझक या खेद के एलान कर दिया कि जो भी पानी का पैसा नहीं चुकाएगा, उसका कनेक्शन काट दिया जाएगा।

इस सबसे गुस्सा भड़का और लोग सड़कों पर निकल आए। जनसमूह ने शहर के केन्द्रीय बाजार पर कब्ज़ा कर लिया। जनता और कंपनी के बीच सुलह कराने की बजाय सरकार ने लोगों को कुचलने के लिए सेना बुला ली। आंदोलन के बड़े नेता गिरफ्तार कर लिए गए। आंदोलन और तेज़ हो गया। इसे 'पानी युद्ध' के नाम से पुकारा जाने लगा। अप्रैल 2000 में एक दिन जब सेना लोगों को रोक रही थी, सादी पोशाक पहने एक व्यक्ति ने सेना की टुकड़ी के पीछे से लोगों पर गोली चलाई। सत्रह साल का एक किशोर विक्टर ह्यूगो डाजा मारा गया। यह जन संघर्ष में एक प्रमुख मोड़ साबित हुआ। इसके बाद पीछे मुड़कर देखने का सवाल ही नहीं था और आखिरकार कंपनी को देश छोड़कर जाना पड़ा।

एक झटका, एक आह्वान

पानी के निजीकरण की पैरवी करने वालों के लिए कोचाबम्बा एक गहरे सदमे से कम नहीं था। करीब डेढ़ दशक से निजीकरण और भूमंडलीकरण की हवाएं सारी दुनिया में बह रही हैं। विश्व भर में अब तक साझी और सार्वजनिक मिल्कियत में रहे आए क्षेत्र निजी हाथों में दिए जा रहे हैं। इनमें बिजली, परिवहन, रेल्वे, बीमा, और... पानी शामिल हैं। ढांचागत समायोजन कार्यक्रमों ने एक के बाद एक तमाम देशों को उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण (एल.पी.जी.) का रास्ता अपनाने के लिए मजबूर किया है।

तर्क दिया जाता है कि आर्थिक तरक्की का एकमात्र रास्ता एल.पी.जी. है। कारण यह बताया जाता है कि अब सरकारों के खजानों में इतना पैसा नहीं है कि इन क्षेत्रों के लिए ज़रूरी निवेश

कोचाबम्बा: पानी के निजीकरण के विरोध में लोग सड़कों पर उतरे

फोटो: टॉम क्रूज़

किया जा सके। इसके अलावा यह भी कहा जाता है कि सरकारें नाकारा और भ्रष्ट साबित हुई हैं और उन्हें ज्यादा कार्यकुशल निजी क्षेत्र के लिए रास्ता खाली कर देना चाहिए।

चूंकि पानी अर्थव्यवस्था और बुनियादी ढांचे का एक अहम हिस्सा है, इसमें कोई अचरज नहीं कि पानी सेवाओं के निजीकरण के लिए ज़बर्दस्त दबाव बन रहा है। नतीजे में विश्व के कई हिस्सों में जल क्षेत्र का निजीकरण बड़े पैमाने पर हुआ है। कोचाबम्बा की घटनाएं बार-बार याद दिलाती हैं कि जल सेवाओं के निजीकरण की गुलाबी तस्वीर में कांटे कहीं ज्यादा हैं। और कोचाबम्बा का मामला अकेला नहीं है। कोचाबम्बा की घटनाओं ने इसी तरह के, हालांकि कुछ कम नाटकीय, मामलों की तरफ हमारा ध्यान खींचा है।

पिछले कुछ सालों से हम देख रहे हैं कि भारत में जल क्षेत्र में निजी कंपनियों को लाने के लिए दबाव बढ़ रहा है। निजीकरण बहुत से सवाल खड़े करता है। इस मामले में व्यापक बहस, चर्चा और गहरी छानबीन ज़रूरी है, वरना न जाने कितने कोचाबम्बा भारत में दोहराए जाएंगे।

भारत में बहुत पहले से मौजूद है पानी का निजीकरण

यह बात समझने की ज़रूरत है कि भारत में पानी काफी पहले से एक निजी वस्तु के रूप में रहा है। व्यावहारिक तौर पर भूमिगत पानी निजी संपत्ति ही है। ज़मीन जिसकी होती है, वही उसके नीचे के पानी का मालिक होता है। भूस्वामी को इस पानी को पम्प के ज़रिए उलीचने का असीमित-सा अधिकार होता है, जबकि हो सकता है कि यह भूमिगत पानी उस व्यक्ति की ज़मीन की सीमा से बाहर तक फैला हो। इस असीमित अधिकार ने उत्तरी गुजरात जैसे सुविकसित पानी बाज़ारों को भी जन्म दिया है।

बहुत से उद्योग और बड़ी रिहायशी कालोनियां खुद के भूमिगत जल को निकालते हैं।

इसी तरह निजी टैंकरों के जरिए पानी मुहैया कराना अरसे से भारतीय जनजीवन का हिस्सा रहा है। चाहे हाथगाड़ी, बैलगाड़ी में लदे ड्रमों के ज़रिए या फिर ट्रक-ट्रैक्टर के टैंकरों के ज़रिए हो, पानी की निजी आपूर्ति आम बात है। ये टैंकर लोगों, बड़ी कालोनियों, होटलों आदि तक पानी पहुंचाते हैं, खास तौर पर पानी की कमी वाले दिनों में।

थोड़े से अलग नज़रिए से देखें तो गांवों में दलितों को कुंओं, तालाब आदि जल स्रोतों के इस्तेमाल से रोका जाना भी एक तरह का निजीकरण ही है; इस मामले में मालिकाना हक तथाकथित ऊंची जातियों का होता है।

निजीकरण के नए मुकाम

पिछले 10-12 सालों में पानी के निजीकरण के मामले में कई नई बातें हुई हैं। भारत में बोतलबंद पेयजल का उभार पानी के निजीकरण और बाज़ारीकरण का एक बड़ा पहलू है। ऐसे देश में जहां प्यासे को पानी पिलाना पुण्य समझा जाता हो और गर्मियों में लोग धर्म का पालन करते हुए प्याऊ लगाते हों, वहां बोतलबंद बिकाऊ पानी का तेज़ प्रसार एक विडंबना ही है, जिससे बाज़ार की ताकत का एहसास होता है।

भारत सरकार ने 1991 में बिजली क्षेत्र को निजी सौदागरों के लिए खोलने की अपनी नीति का एलान किया था। इसी के हिस्से के तौर पर पनबिजली को भी निजी क्षेत्र की भागीदारी के लिए खोला गया। इसका मतलब था कि निजी कंपनियां बांध बना और चला सकती हैं, इनकी मालिक हो सकती हैं। इस तरह नदी के पानी पर उनका नियंत्रण होगा।

पनबिजली के निजी हाथों में जाने का सिलसिला तो करीब 10 सालों से चल ही रहा है, अब हम जल क्षेत्र के दूसरे हिस्सों के निजीकरण की शुरुआत देख सकते हैं। सिंचाई का निजीकरण अब भी पूरी तरह शुरू नहीं हुआ है। वैसे महाराष्ट्र जैसे राज्य इस पर सक्रियता से विचार कर रहे हैं और एक नीति का मसौदा बनाने के लिए एक केबिनेट उपसमिति भी बनाई गई है। उड़ीसा में विश्व बैंक की एक परियोजना के तहत सार्वजनिक क्षेत्र की लिफ्ट सिंचाई प्रणाली को योजनाबद्ध ढंग से कमज़ोर करने और खत्म करने की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है और निजीकरण के लिए पांच चरणों में काम शुरू किया गया है।

दूसरी तरफ देश में जल आपूर्ति, खास तौर पर शहरों व कस्बों को जल आपूर्ति का निजीकरण चालू हो चुका है और विकास व क्रियान्वयन के अलग-अलग स्तरों पर है।

बुनियादी बदलाव

नई घटनाएं पानी के निजीकरण की प्रकृति में आए एक बुनियादी बदलाव को दर्शाती हैं। पहले पानी के व्यापार में ज्यादातर व्यक्तियों की ही हिस्सेदारी थी; जैसे ट्यूबवैल आधारित पानी के बाज़ारों में किसान या टैंकर जल आपूर्ति के मामले में ठेकेदार। दरअसल, बहुत से टैंकर तो स्थानीय निकायों या सरकार के साथ अनुबंध के तहत चलते थे और एक मायने में ये सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा ही थे। इसके अलावा टैंकर मालिकों का पानी के क्षेत्र पर कोई आधिपत्य भी नहीं था। इसमें कोई शक नहीं कि वे अपने हितों की खातिर नीतियों पर असर डालने की कोशिश करते थे लेकिन उनका प्रभाव सीमित था।

नए मामलों में ज़्यादातर खिलाड़ी कार्पोरेशन्स हैं - मुख्यतः बहुराष्ट्रीय व विदेशी कार्पोरेशन्स। ये निहायत शक्तिशाली हैं और वित्तीय व राजनैतिक दमखम रखते हैं। इसके अलावा इन्हें विश्व बैंक जैसी अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय एजेंसियों की हिमायत हासिल है। सरकारों और नीतियों पर इन एजेंसियों का खासा बोलबाला है और ये उसका इस्तेमाल जल क्षेत्र में नए खिलाड़ियों को बढ़ावा देने में करती हैं। निजीकरण का दायरा अभूतपूर्व ढंग से बढ़ा है। अब कामकाज का पैमाना बहुत विशाल हो गया है और उतना ही बड़ा पैसा उसमें लगा है। यही वजह है कि जल क्षेत्र के बड़े-बड़े हिस्सों पर बहुराष्ट्रीय कंपनियां कब्जा कर पा रही हैं। इसके लिए उस चीज़ की प्रकृति भी ज़िम्मेदार है जिसका निजीकरण किया जा रहा है यानी समूचे शहर की जल आपूर्ति या नदियों के बड़े-बड़े खंड। लोगों की, समुदाय की और देश की संप्रभुता के लिहाज़ से इसके परिणाम गंभीर हो सकते हैं।

दूसरे शब्दों में, आज जो कुछ हो रहा है उसे महज़ निजीकरण नहीं कहा जा सकता। उसे कंपनीकरण या कंपनी-भूमंडलीकरण कहना ज्यादा ठीक होगा। (क्योंकि ज़्यादातर तो विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियां हैं।)

इसके अलावा बहुराष्ट्रीय कंपनियों की लोगों के प्रति ज़िम्मेदारी भी बहुत कम है और लोगों की उन तक पहुंच तो और भी कम है। पर्यावरण, जन स्वास्थ्य आदि सार्वजनिक हित के मामलों में तो कंपनियों ने न के बराबर ज़िम्मेदारी की भावना दिखाई है। लोगों के लिए उनसे जवाबदेही व नियम पालन सुनिश्चित करवाना निहायत मुश्किल है। अक्सर कहा जाता है कि निगम सिर्फ अपने शेयरधारकों के प्रति जवाबदेह होते हैं। लेकिन अमरीका में एनरॉन जैसी हाल की घटनाओं से पता चलता है कि शेयरधारकों के प्रति यह जवाबदेही भी नदारद है।

सबसे अहम बात यह है कि बिजली व अन्य क्षेत्रों के निजीकरण के पिछले चरणों के विपरीत इस बार जल क्षेत्र के निजीकरण को विश्व व्यापार संगठन के हिस्से के रूप में आगे बढाया जा रहा है। इसके बड़े गंभीर मायने हैं।

पनबिजली समेत बिजली क्षेत्र के निजीकरण पर काफी बहस व विस्तृत चर्चा हो चुकी है, इसलिए इस लेख में हम उस पर बात नहीं करेंगे। हम जल आपूर्ति और स्वच्छता (sanitation) के निजीकरण के उभरते घटनाचक्र पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

जल आपूर्ति के निजीकरण के नुक्ते

पानी आपूर्ति के निजीकरण में निम्नलिखित में से कोई एक या एकाधिक घटक शामिल हो सकते हैं: जल स्रोत (जैसे कोई बांध), जलशोधन व वितरण से लेकर गंदे पानी या मल-जल का संग्रहण, उपचार व निपटान और निकासी। इसीलिए आम तौर पर इसे जल आपूर्ति व स्वच्छता कहा जाता है। निजीकरण भी कई किस्म का व कई स्तरों पर हो सकता है। एक संक्षिप्त ब्यौरा इस तरह है:[2]

1. **सेवा अनुबंध**: विशेष तरह की सेवा के लिए छोटी मियाद के अनुबंध, जैसे, मीटर रीडिंग और बिल बनाना। आम तौर पर निजी कंपनी की ओर से कोई निवेश नहीं होता। न तो कोई वित्तीय जोखिम होता है और न ही उपभोक्ता के साथ कोई सीधा कानूनी रिश्ता। (मेक्सिको शहर का उदाहरण इसी तरह का है।)

2. **पट्टा/प्रबंधन अनुबंध**: जैसा कि नाम से जाहिर है, या तो निजी कंपनी स्थानीय निकाय से किसी सुविधा को पट्टे पर लेती है या फिर स्थानीय निकाय कंपनी को सुविधा के प्रबंधक के रूप में नियुक्त करता है। दोनों ही मामलों में मिल्कियत सार्वजनिक रहती है, और निजी कंपनी आम तौर पर नए निवेश या सुविधा के विस्तार के लिए जिम्मेदार नहीं होती। रोज़मर्रा के काम-काज में (कंपनी के लिए) कुछ व्यावसायिक जोखिम ज़रूर होता है।

3: **बूट अनुबंध**: बनाओ, मालिक रहो, चलाओ और सौंपो (Build, Own, Operate, Transfer - BOOT) अनुबंधों में निजी कंपनी बुनियादी ढांचे का कुछ हिस्सा बनाती है (जैसे कि उपचार संयंत्र या शोधन संयंत्र) और इसे एक नियमित शुल्क लेकर चलाती है। आम तौर पर ये लंबी अवधि के अनुबंध होते हैं और इनमें एक खरीदी समझौता भी होता है, जिसमें एक न्यूनतम मांग की गारंटी होती है। (यह बिजली खरीद समझौते के 'बिजली लो या पैसा चुकाओ' अनुच्छेद जैसा होता है। उदाहरण के लिए यह मेक्सिको के कुछ हिस्सों में लागू है।)

4. **रियायत** (Concession) : लंबी अवधि के अनुबंध, जिनमें निजी कंपनी किसी तंत्र का पूरा ज़िम्मा लेती है, सेवा उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी लेती है। और विस्तार, नए निवेश और बिलों की वसूली के लिए भी उत्तरदायी होती है। (जैसे ब्यूनस आयर्स में है।)

5. **विनिवेश** (divestures): जहां सरकार किसी सुविधा में से अपने साधारण शेयर पूंजी बेचे और कोई निजी कंपनी उसे खरीदे। यह पूरा या आंशिक विनिवेश हो सकता है।

ज्यादातर मामलों में निजीकरण का एक ज़रूरी अंग यह होता है कि एक स्वतंत्र विनियामक (regulator) का गठन किया जाए जिसके कामों में आम तौर पर शुल्क दर तय करना भी शामिल होता है।

भारत में तो पानी आपूर्ति में निजी क्षेत्र की भागीदारी कीं शुरुआत ही हुई है, मगर लेटिन अमेरिका और दक्षिण पूर्व एशिया में यह काफी आगे बढ़ चुका है। जल आपूर्ति के निजीकरण के परिणाम क्या हो सकते हैं, इसे समझने के लिए हमें दूसरे देशों में पानी के निजीकरण के अनुभव को देखना होगा। साथ ही भारत में अन्य क्षेत्रो के निजीकरण के अनुभव देखना भी जरूरी है।

निजीकरण का नमूना बना बिजली क्षेत्र

बिजली व पानी के क्षेत्रों में कई समानताएं हैं। पानी व बिजली, दोनों ही विकास की प्रक्रिया में अहम भूमिका निभाते हैं। पानी एक जैविक जरूरत भी है। इस कारण लंबे समय से बिजली व पानी का इंतज़ाम समुदाय व सरकार की सामाजिक व नैतिक ज़िम्मेदारी माना जाता रहा है। ऐसा ही भारत में भी है: चूंकि भारत में आमदनी और संसाधनों के बंटवारे में भारी गैर-बराबरी है, इसलिए हमारे यहां आबादी का एक बड़ा हिस्सा ऐसा है जो पानी व बिजली की न्यूनतम ज़रूरी आपूर्ति की कीमत भी नहीं चुका सकता। इसलिए ये सेवाएं कम दरों पर मिलना ज़रूरी हैं। यही वजह है कि दोनों ही सेवाएं अब तक सार्वजनिक क्षेत्र में थीं और दोनों में सब्सिडी भी मिलती रही है। बड़े पैमाने के निवेश और विशाल वितरण तंत्र की वजह से दोनों ही क्षेत्र अब तक स्वाभाविक एकाधिकार के क्षेत्र माने जाते थे। भारत में इन दोनों ही संसाधनों के बंटवारे में और इन तक लोगों की पहुंच में भारी गैर-बराबरी है। जहां आबादी का बड़ा हिस्सा पानी व बिजली के न्यूनतम इंतज़ाम से भी वंचित है, वहीं चंद दौलतमंद लोग बड़ी मात्रा में इनका उपभोग करते हैं।

हमारे यहां आबादी का एक बड़ा हिस्सा ऐसा है जो पानी व बिजली की न्यूनतम ज़रूरी आपूर्ति की कीमत भी नहीं चुका सकता। इसलिए ये सेवाएं कम दरों पर मिलना ज़रूरी हैं।

पानी क्षेत्र के निजीकरण के लिए भी वही बहाने बनाए जाते हैं, जो बिजली क्षेत्र के लिए बनाए जाते हैं - सरकार के पास संसाधनों की कमी का रोना, लागत से कम मूल्य पर आपूर्ति के कारण अंदरूनी संसाधनों की कमी और सार्वजनिक क्षेत्र का निकम्मापन और भ्रष्टाचार।

इसलिए बिजली क्षेत्र के निजीकरण के अनुभव से हमें पानी क्षेत्र के बारे में काफी कुछ पता चल सकता है।

भारत में बिजली क्षेत्र के निजीकरण के सबक

भारत में बिजली क्षेत्र का निजीकरण 1991 में शुरू हुआ था।[3] करीब 90 हज़ार मेगावॉट की नई क्षमता लगाने के लिए बड़े गाजे-बाजे के साथ निजी कंपनियों के साथ अनुबंधों पर दस्तखत किए गए थे। इनमें से ज़्यादातर कंपनियां विदेशी थीं। और यह सब बेवजह की हड़बड़ी और पूर्ण गोपनीयता के साथ किया गया। जनता के बीच कोई बहस भी नहीं चलाई गई। भय का एक माहौल बनाते हुए कुछ ऐसी तस्वीर पेश की गई कि तेज़ बढ़ती मांग आपूर्ति को बहुत पीछे छोड़ देगी और बिजली गुल होने से अगले सालों में जनजीवन और अर्थव्यवस्था में अफरा-तफरी फैल जाएगी। इस दहशत का इस्तेमाल बहस को दबाने और जल्दबाज़ी को जायज़ ठहराने के लिए किया गया।

निजीकरण को सही ठहराने के लिए कहा जाता है कि 'मांग व आपूर्ति की इस खाई' को भरने के लिए भारी निवेश की ज़रूरत है। सरकार भयानक वित्तीय संकट का सामना कर रही है और बिजली क्षेत्र में लगाने के लिए उसके पास पैसे नहीं हैं। एक और तर्क यह दिया जाता है कि किसानों व दूसरे तबकों को बिजली हास्यास्पद रूप से लागत से काफी कम मूल्य पर दी जा रही है, इस कारण से बिजली क्षेत्र बड़े घाटे का सामना कर रहा है। और नए निवेशों के लिए अंदरूनी संसाधन नहीं हैं।

यह तर्क भी दिया जाता है कि सार्वजनिक क्षेत्र नाकारा है, आधुनिक तकनीक के मामले में ठन-ठन गोपाल है, बदइन्तज़ामी का शिकार है, प्रबंध कौशल में घटिया है, और भ्रष्ट है। यदि परिणाम इतने भयानक न होते तो शायद यह बात एक अच्छा लतीफा होती कि सरकारें अपने ही निकम्मेपन और भ्रष्टाचार को निजीकरण के बहाने के रूप में पेश कर रही हैं।

यदि परिणाम इतने भयानक न होते तो शायद यह बात एक अच्छा लतीफा होती कि सरकारें अपने ही निकम्मेपन और भ्रष्टाचार को निजीकरण के बहाने के रूप में पेश कर रही हैं।

कहा गया कि अगर निजी कंपनियां आ गईं तो ये सारी समस्याएं छूमंतर हो जाएंगी। सरकार ने साष्टांग दण्डवत किया और निजी कंपनियों को रिझाने के लिए बहुत सी रियायतों की घोषणा की:

- 4:1 का उदार कर्ज अंश पूंजी अनुपात - इसका मतलब है कि परियोजना के कुल खर्चे में से कंपनी को अपनी तरफ से सिर्फ 20 प्रतिशत लगाना होगा - बाकी वह बैंकों व वित्तीय संस्थाओं से उधार ले सकती है और उसका ब्याज उपभोक्ताओं से वसूला जाएगा।
- लागत से ऊपर गणनाएं - बिक्री की दरें इस हिसाब से तय की जाएंगी कि कंपनी को पूरी लागत (कर्ज़ अदायगी की लागत, ब्याज वगैरह समेत) वापस मिले और मुनाफा उसके ऊपर हो। इस सबसे कुल लागत में तेज़ी से इज़ाफा होता है।[4]
- अंश पूंजी पर 16 प्रतिशत की सुनिश्चित मुनाफा दर और फिर बोनस। इससे वास्तविक मुनाफा दर बहुत ज्यादा बढ़ जाती है।

- बिजली खरीद की गारंटी। यानी किसी समय बिजली चाहिए हो या नहीं और इस कंपनी की दरें सस्ती हों या नहीं, सरकार कंपनी से एक न्यूनतम मात्रा में बिजली खरीदने को बाध्य होगी। यह मात्रा न खरीदी जाए, तब भी उसके लिए पैसा चुकाना होगा। यह बिजली खरीद समझौते के 'बिजली लो या पैसे चुकाओ' अनुच्छेद में अंकित है।
- बिजली दरें डॉलर की विनिमय दरों से जोड़ी गईं, ताकि कंपनी मुनाफे को अपने मूल देश भेज सके और विदेशी कर्ज़ का भुगतान डॉलर में कर सके। इसका मतलब यह है कि डॉलर की विनिमय दर में उतार-चढ़ाव का बोझ उपभोक्ता वहन करेंगे। यह भी हो सकता है कि बिजली उत्पादन की लागत न बढ़े मगर डॉलर की विनिमय दरों में थोड़े हेर-फेर के कारण बिजली दरें बढ़ जाएं।
- पनबिजली परियोजनाओं के मामले में, जल सम्बंधी जोखिम सरकार को उठाने होंगे (मसलन किसी साल नदी में पर्याप्त पानी नहीं आया) और इस कारण से बिजली पैदा न होने की सूरत में भी निर्धारित न्यूनतम भुगतान करना होगा।
- अनुबंध व बिजली खरीद समझौते खुली निविदाओं की बजाय सौदेबाज़ी के ज़रिए किए गए। नतीजतन कई संदेहास्पद सौदे हुए। बहुत सी परियोजनाएं भ्रष्टाचार और कदाचार के आरोपों के चलते विवादों का केन्द्र बनीं।
- निजी कंपनियों को भुगतान सुनिश्चित करने के लिए राज्य सरकार की गारंटी, केन्द्र सरकार की संप्रभु प्रति-गारंटी दी गईं या फिर सशर्त अनुबंध खातों (एस्क्रो अकाउंट) की व्यवस्था की गई।

आज 12 साल बीत गए हैं और यह साफ हो गया है कि बिजली का निजीकरण एक बचकाना कदम था, जो विस्तृत व गहरी छानबीन किए बिना, दिमाग लगाए बिना और कोई सुविचारित रणनीति बनाए बिना उठाया गया था। और आशंकाओं के अनुरूप यह औंधे मुंह गिरा। निजी क्षेत्र की क्षमताओं और सामर्थ्य के बारे में किए गए ऊंचे-ऊंचे दावों की पोल भी खुल गई।

बहुत सी परियोजनाएं तो शुरू ही नहीं हो सकीं। जो हुईं थीं, उनमें से कुछ ही पूरी हो पाईं और बाकी धीरे-धीरे घिसट रही हैं। बहुत सी विदेशी कंपनियां मैदान छोड़ गईं। ज़्यादातर परियोजनाएं अपने दावों के विपरीत वित्त जुटाने में नाकाम रहीं। इसके चलते उस सरकारी आदेश में संशोधन किया गया, जिसके अनुसार कंपनियां परियोजना लागत के एक निश्चित हिस्से से ज़्यादा धन सार्वजनिक निधियों से नहीं ले सकती थीं। जो परियाजनाएं पूरी हो पाईं, वे बहुत ऊंची लागत पर बिजली बना रही हैं। एनरॉन सबसे जाना-माना उदाहरण है - इसे बिजली की लागत बहुत ज़्यादा होने के चलते बंद कर दिया गया (एनरॉन सबसे बड़ी परियोजनाओं में से एक थी)। वितरण के क्षेत्र में प्रवेश करने वाली कंपनियां भी अपने बढ़े-चढ़े दावों को पूरा करने में बुरी तरह से नाकाम रही हैं। न तो वे बिजली तक पहुंच बढ़ा पाईं, न वसूली बढ़ा पाईं और न ही संचारण या वितरण के दौरान होने वाले नुकसान पर काबू कर सकीं। अलबत्ता बिजली दरों ने जरूर छलांगें लगाईं।

पानी व बिजली क्षेत्र की समानताओं के कारण यह स्वाभाविक है कि पानी का निजीकरण भी बिजली की तर्ज़ पर किया जा रहा है। दरअसल बिजली क्षेत्र को दी गई बहुत सी रियायतें पानी क्षेत्र के निजीकरण पैकेज का भी हिस्सा है। इनमें न्यूनतम सुनिश्चित मुनाफा, सरकार या अन्य सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं द्वारा भुगतान की गारंटी, 'पानी लो या पैसे चुकाओ' अनुच्छेद, किसी इलाके में आपूर्ति करने का एकाधिकार, विदेशी मुद्रा विनिमय दर में उतार-चढ़ाव से हिफाज़त आदि शामिल हैं।

जल क्षेत्र के निजीकरण से उपजी समस्याएं व मुद्दे भी वैसे ही हैं क्योंकि बिजली क्षेत्र के निजीकरण की समस्याएं व नतीजे दरअसल निजीकरण की प्रक्रिया से ही जुड़े हुए हैं। वे निजीकरण में निहित हैं। आगे हम यही चर्चा करेंगे कि ऐसा क्यों है।

निजीकरण के मुद्दे व समस्याएं

निजी कंपनी का बुनियादी मकसद मुनाफा होता है। यह पहला और आम तौर पर एकमात्र मकसद होता है। इसलिए जब भी कोई कंपनी नया निवेश करती है तो और ज़्यादा बटोरने की आशा में ही करती है। यह निजी क्षेत्र की दिलचस्पी का बुनियादी और अकाट्य तर्क है। इसे और इसके परिणामों को साफ-साफ समझना जरूरी है।

कोई भी निजी कंपनी अपने निवेश, कर्ज और उस पर लगने वाले ब्याज और 'समुचित' मुनाफे की वसूली के अलावा यह भी चाहेगी कि डॉलर विनिमय दर में उतार-चढ़ाव जैसी दूसरी चीज़ों से भी वह महफूज़ रहे। गौरतलब है कि कंपनी के वरिष्ठ अफसरों की आलीशान जीवन शैली का भुगतान भी पानी की दरों में से ही होगा, भले ही उनके द्वारा बेची जानी वाली बिजली या पानी गरीब लोगों के लिए काफी महंगे हो जाएं। इस सबका यही अर्थ है कि बिजली और पानी के दाम बढ़ जाएंगे। याद करें कि ठीक यही हाल दाभोल बिजली परियोजना में हुआ था, जिसके चलते परियोजना ही बंद हो गई। और यही कहानी कोचाबम्बा की थी।

निजी कंपनी मुनाफे की खातिर धंधे में आती है और उन लोगों के बारे में कोई मुरव्वत नहीं करती, जो ऊंची दरें नहीं चुका सकते। उनके तो बस कनेक्शन काट दिए जाएंगे। उदाहरण के लिए, पानी की कीमत न चुका पाने के कारण गिनी में कुल आबादी के एक तिहाई यानी करीब 10 हज़ार लोगों के कनेक्शन काट दिए गए थे। मुख्य बात यह है कि गरीब तबकों या झुग्गियों या दूर-दराज़ इलाकों में रहने वालों तक पानी पहुंचाने का निजी कंपनी का कोई सामाजिक दायित्व नहीं होता, क्योंकि यह मुनाफे का सौदा नहीं है। लागत कम करने के उपायों के चलते बड़े पैमाने पर कर्मचारियों की छंटनी होगी। दरअसल, निजी कंपनियों की कार्य कुशलता का एक पैमाना सप्लाई किए गए पानी की मात्रा और कर्मचारियों की संख्या का अनुपात है। यह जितना कम होगा, कंपनी उतनी ज्यादा कार्य-कुशल कहलाएगी। कंपनियां अक्सर इसके लिए ठेका मजदूर रखने, मशीनीकरण और ठेके पर काम करवाने (outsourcing) जैसे उपाय अपनाती हैं। शायद ज़रूरत से ज्यादा स्टाफ को एक निश्चित सीमा तक संतुलित करने की बात मानी जा सकती है मगर कंपनियां तो इतने पर नहीं रुकेंगी।

पानी की कीमत न चुका पाने के कारण गिनी में कुल आबादी के एक तिहाई यानी करीब 10 हजार लोगों के कनेक्शन काट दिए गए थे।

यह असंभव ही लगता है कि निजी क्षेत्र व्यावसायिक ज़ोखिम उन गारंटियों के बगैर उठाएगा, जो अंततः जनता के पैसे के दम पर ही मुहैया कराई जाती हैं। और न ही निजी क्षेत्र 'बिजली लो या पैसा चुकाओ', जैसे अनुच्छेद के बिना कोई बड़ा निवेश करेगा। बिजली क्षेत्र में शुरुआत में राज्य सरकारों ने गारंटियां दी थीं। लेकिन खुद राज्य सरकारों की माली हालत खस्ता थी, इसलिए कंपनियों ने मांग की थी कि केन्द्र सरकार प्रति-गारंटी दे और यह उन्हें मिल भी गई। मगर जब यह नज़र आया कि केन्द्र सरकार के लिए भी एक हद से ज़्यादा की गारंटियां निभाना मुमकिन नहीं होगा तब एस्क्रो खाते जैसे उपाय पेश किए गए। एस्क्रो प्रक्रिया के तहत किसी सुविधा से प्राप्त आमदनी (जैसे बिजली बिलों की वसूली से प्राप्त पैसा) एक अलग खाते में रखी जाती है। इस खाते से पैसा निकालने का पहला अधिकार कंपनी का होता है, जब तक कि उसे उसका पूरा मुनाफा न मिल जाए। इसका मतलब यह है कि कर्मचारियों के वेतन भुगतान से भी पहले इस खाते से कंपनी का मुनाफा निकाल लिया जाएगा। लेकिन एस्क्रो खाते की सामर्थ्य (कुल आमदनी) भी सीमित है, इसलिए कंपनियां विश्व बैंक या विदेशी द्विपक्षीय फण्डिंग एजेसियों से गारंटी देने को कह रही हैं। ऐसी ही व्यवस्थाओं की मांग जल क्षेत्र में भी की जा रही है। उदाहरण के लिए अहमदाबाद में यह प्रस्ताव है कि निजी कंपनी को भुगतान की गारंटी ऑक्ट्राय वसूली से बने एस्क्रो खाते के ज़रिए दी जाए।

जल क्षेत्र के निजीकरण से जुड़ा एक अहम पहलू समझना ज़रूरी है। जो लोग पानी के पूरे (बढ़े हुए) दाम नहीं चुका सकते, उन्हें जल प्रदाय करने के दो प्रमुख तरीके हैं। पहला तरीका है क्रॉस सब्सिडी। इस तरीके में, जिन उपभोक्ताओं में ज़्यादा चुकाने की सामर्थ्य है (मसलन उद्योग) उनसे ज़्यादा पैसा वसूला जाता है और इसमें से उन लोगों को सब्सिडी दी जाती है जो पूरा दाम नहीं चुका सकते। दूसरा तरीका सीधी सब्सिडी का है। इसमें लागत मूल्य व कमज़ोर तबको के लिए तय की गई कम दर के बीच के अंतर को पाटने के लिए सरकार सब्सिडी देती है। निजी कंपनियां पहले तरीके को पसंद नहीं करती, क्योंकि वे अपने सबसे अच्छे ग्राहकों से ज़्यादा वसूली नहीं करना चाहतीं। निजी प्रदायकों का तर्क रहता है कि बड़े उपभोक्ताओं से कम वसूला जाना चाहिए न कि अधिक। जहां तक दूसरे तरीके का सम्बंध है, सरकार सब्सिडियो से पल्ला झाड़ने में लगी है और कह रही है कि उसके पास संसाधन नहीं हैं। जो अक्सर कहा नहीं जाता, वह यह है कि विश्व बैंक जैसी एजेंसियां सरकार पर दोनों तरह की (सीधी व क्रॉस) सब्सिडियों में कटौती करने का दबाव डाल रही हैं। अपनी बात मनवाने के लिए वे बहुधा कर्ज़ की शर्तों का भी इस्तेमाल करती हैं।

इसकी तार्किक परिणति यह है कि चूंकि न तो आर्थिक रूप से सक्षम उपभोक्ता और न सरकार कम आय वाले उपभोक्ताओं को रियायत देने को तैयार है, इसलिए कीमतें तो बढ़नी ही हैं। और अगर कोई ऊंची कीमत अदा न कर पाए तो उसे पानी मिलना बंद हो जाएगा। संक्षेप में,

क्रॉस सब्सिडी की समाप्ति, कीमतों में वृद्धि और 'पैसा नहीं तो पानी नहीं' का सिद्धांत निजीकरण की प्रक्रिया के अभिन्न अंग हैं।

इस तरह पानी क्षेत्र सामाजिक दायित्व नहीं रह जाता और पानी एक 'सामाजिक वस्तु' की बजाय महज़ एक व्यापार की वस्तु बनकर रह जाता है। यही प्रक्रिया पिछले 12 सालों से बिजली क्षेत्र में और दुनिया के कई हिस्सों में पानी के क्षेत्र में भी साफ नज़र आ रही है। और इसी नज़रिए की वकालत विश्व बैंक, एशियाई विकास बैंक और विश्व व्यापार संगठन कर रहे हैं। सचमुच, दुनिया भर में निजीकरण के दबाव के चलते 'पूरी लागत वसूली' का यह विचार एक विचारधारा बनकर उभर रहा है।

इस तरह पानी के कंपनीकरण की प्रक्रिया में निहित है कि पानी का व्यापारीकरण होगा यानी उसे व्यापारिक माल में बदल दिया जाएगा।

जब इतना महत्वपूर्ण संसाधन निजी हाथों, वह भी विदेशी कंपनियों के हाथों में जा रहा हो, तो इसका सबसे गहरा असर नागरिकों, समुदायों और देश की संप्रभुता पर पड़ता है। आपको शायद याद होगा कि जब उड़ीसा में बिजली बनाने व बांटने का काम निजी क्षेत्र के हवाले कर दिया गया था तो अमेरिका की एईएस कंपनी द्वारा नियंत्रित उत्पादन कंपनी ने बिल न चुकाने पर पूरे ग्रिड की बिजली काटने में कोई संकोच नहीं दिखाया था। अनिवार्य सेवा कानून (एस्मा) लगाने और कंपनी के मुख्य कार्यकारी अधिकारी को गिरफ्तार करने की धमकी के बाद ही आपूर्ति बहाल हुई थी।

व्यापारीकरण और वस्तुकरण का मतलब है कि जो लोग दाम नहीं चुका सकते वे उसका उपयोग भी नहीं कर सकेंगे। पहले से हाशिए पर बसर कर रहे गरीबों को और अभावों की तरफ धकेला जाएगा। जब लोग पानी जैसे जीवनदायी संसाधन से वंचित होंगे तो सामाजिक अशांति के लिए उपजाऊ ज़मीन तैयार होगी। लेकिन बात इतनी सी नहीं है। जब पानी, बिजली, कृषि आदि हर क्षेत्र पर कार्पोरेट भूमंडलीकरण का हमला होगा, तब क्या कुछ हो सकता है, इसका जोरदार वर्णन लेखक अरूंधती राय ने किया हैः

> *"अर्जेन्टाइना, ब्राज़ील, मेक्सिको, बोलीविया, भारत जैसे देशों में कार्पोरेट भूमंडलीकरण के खिलाफ आंदोलन फैल रहा है। उसे काबू में रखने के लिए सरकारें लगाम कस रही हैं। ... लेकिन सामाजिक असंतोष की अभिव्यक्ति सिर्फ रैलियां, धरने आदि ही नहीं है। बदकिस्मती से, बढ़ते अपराध व अफरातफरी और हर तरह की नाउम्मीदी व मोहभंग भी इसी सामाजिक असंतोष की झलक है। और हम इतिहास के हवाले से जानते हैं कि ये सब सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, धार्मिक कट्टरता, फासीवाद और आतंकवाद जैसी भयानक चीजों के लिए एक उपजाऊ मैदान बनाते हैं।"*[5]

विडंबना यह है कि इसके बावजूद यह ज़रूरी नहीं है कि सम्बंधित क्षेत्र की बुनियादी समस्याएं हल हो जाएंगी। यह बात बिजली क्षेत्र के अनुभव से साफ ज़ाहिर है क्योंकि इस बात का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है कि निजीकरण से इस क्षेत्र के बुनियादी मसलों का जवाब मिल सकता है।

ये आशंकाएं मनगढ़ंत नहीं हैं, बल्कि भारत में बिजली क्षेत्र व दुनिया में जल प्रदाय के निजीकरणों के अनुभवों पर आधारित सचमुच के भय हैं।

दुनिया के अन्य इलाकों के अनुभव

सबसे बदनाम मामला कोचाबम्बा का ही है, जिसका ज़िक्र शुरू में किया गया है। लेकिन कोचाबम्बा की कहानी सम्बंधित कंपनी को देश से भगाने के साथ ही खत्म नहीं हुई है।

कंपनी ने अब अंतर्राष्ट्रीय निवेश विवाद निपटारा केन्द्र (ICSID) में दावा ठोक दिया है। विवादों को सुलझाने का यह केन्द्र विश्व बैंक में है और विश्व बैंक द्वारा ही बनाया गया है। एगुअस डेल टुनारी/बेक्टेल ने बोलीविया पर 250 लाख अमेरिकी डॉलर (करीब 120 करोड़ रुपए) के हर्जाने का दावा ठोका है। इस केन्द्र में कार्यवाही पूरी तरह गोपनीय होती है और इसमें निर्णय से प्रभावित लोगों या अन्य आम लोगों की कोई सुनवाई नहीं होती। इतना ही नहीं, इस केन्द्र तक अपने मामले को ले जाने में बेक्टेल कंपनी छल-कपट का भी सहारा ले रही है। वह स्वयं को एक डच कंपनी बता रही है, ताकि बोलिविया व हालैंड के बीच हुई एक संधि का फायदा उठा सके। इस संधि के तहत किसी व्यापारिक विवाद को ICSID में ले जाया जा सकता है। बेक्टेल ने कोचाबम्बा समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद ही अपना पंजीकरण हालैंड स्थानांतरित किया था। सितंबर, 2002 के शुरू में दुनिया भर के सैकड़ों संगठनों ने विश्व बैंक को लिखा था कि विवाद निपटारे की कार्यवाही खुले में की जाए और उसमें बोलीविया के लोगों को भाग लेने की इजाज़त दी जाए। इस मांग को लेकर जगह-जगह बड़े और जोशीले प्रदर्शन किए गए। कोचाबम्बा तेज़ी से पानी जैसे संसाधन के कंपनीकरण, भूमंडलीकरण और व्यापारीकरण के खिलाफ विश्व भर के लोगों के रोष के प्रतीक के रूप में उभर रहा है।

"हर मामले में, सुधार के पश्चात ..... बाज़ार-आधारित कानून लागू करने की कोशिश की जाएगी ताकि अस्थाई या स्थाई तौर पर पानी के अधिकार स्वैच्छिक रूप से कम मूल्य वाले उपभोक्ताओं से ज़्यादा मूल्य वाले उपभोक्ताओं को हस्तांतरित हों।"

- विश्व बैंक, जल संसाधन रणनीति पर्चा (प्रारूप, मार्च 2002)

कोचाबम्बा कोई अलग-थलग मामला नहीं है, बल्कि इस बात का संकेत है कि दूसरी जगहों में क्या कुछ हो सकता है। पनामा, अर्जेन्टाइना, लीमा, रियो डि जेनरो और त्रिनिदाद में जबरदस्त विरोध प्रदर्शनों के चलते पानी के निजीकरण के कदमों को वापस लेना पड़ा है।[6]

एशिया में जल प्रदाय के निजीकरण को आक्रामक रूप से प्रोत्साहित कर रहे एशियाई विकास बैंक ने कुछ समय पहले ऐसे 10 शहरों का एक अध्ययन करवाया था, जहां या तो जल आपूर्ति का निजीकरण हो चुका है या इसकी योजना बन रही है। इनमें मनीला महानगर, जकार्ता, कराची, कोलंबो व अन्य शहर शामिल थे। इस अध्ययन का प्रमुख निष्कर्ष था कि निजीकरण की सफलता पर अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।[7]

अध्ययन किए गए ज़्यादातर शहरों में पानी की दरें बहुत बढ़ीं। हो ची मिन्ह शहर में तो दरें सात गुना हो गई थीं। कुछ शहरों में सरकारों और निजी कंपनियों के बीच अनुबंध की शर्तों को लेकर गंभीर विवाद पैदा हो गए थे। अध्ययन में यह भी कहा गया है कि *"आप यह निष्कर्ष*

फोटो: टॉम क्रूज़

कंपनी की हिमायती सरकारः
कोचाबम्बा में अपने ही नागरिकों को कुचलने के लिए तैनात फौजी ताकत

निकालने से बच नहीं सकते कि ज़्यादातर निजीकरण उपभोक्ताओं और सरकार द्वारा बेहतर व टिकाऊ सेवाओं की चाह की वजह से नहीं बल्कि ऋणदाताओं व ठेकेदारों की चाह से हुआ।"

इसमें आगे कहा गया है कि *"आश्चर्यजनक बात यह है कि विकास की प्रक्रिया में हमने विकासशील देशों की स्वायत्तता रहित सार्वजनिक जल प्रदाय सेवा को सीधे विदेशी निजी ठेकेदार व नियमन के हवाले कर दिया। हमने यह तक देखने का मौका नहीं छोड़ा कि वही सार्वजनिक सेवा एक नियामक संस्था के तहत ज्यादा स्वायत्तता में रहकर कैसा काम करती है। और हमने यह भी नहीं देखा कि वह सेवा एक नियामक संस्था और 'सिर्फ देशी' निजीकरण के तहत कैसा काम करती है।"*

यह भी कहा गया है, *"सरकारों, जल आपूर्ति की सार्वजनिक संस्थाओं और उपभोक्ताओं को निजी क्षेत्र की भागीदारी के अन्य विकल्पों (जैसे 'डच' मॉडल और 'सिर्फ देशी' निजीकरण) के बारे में अधिक जानकारी मिलनी चाहिए। उन्हें यह भी पता होना चाहिए कि निजी क्षेत्र की भागीदारी के अलावा भी विकल्प हैं, जैसे कि 'नियामक संस्था और ऊंची दरों के साथ पानी की बेहिसाब बरबादी में कमी' ताकि लगाम उपभोक्ता के हाथों में रहे।"*

लंदन की अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण व विकास संस्था (IIED) द्वारा एक और अध्ययन कराया गया था।[8] इसमें आबिदजान, ब्यूनस आयर्स, कोरडोबा, मेक्सिको सिटी और मनीला शहरों की केस स्टडी भी शामिल हैं। इस अध्ययन के मुताबिक *"यह रेखांकित किया जाना चाहिए कि विकासशील देशों में कार्यकुशल ढंग से चल रहीं सार्वजनिक जल व स्वच्छता सेवाओं के बहुतेरे उदाहरण मौजूद हैं..."*

इस मामले में इक्वाडोर, चिली, ज़िम्बाब्वे, और बोत्सवाना के उदाहरण दिए गए हैं। एशियाई विकास बैंक के उपरोक्त अध्ययन में सिंगापुर सार्वजनिक सेवा बोर्ड को एक आदर्श सेवा बताया गया है।

अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण व विकास संस्था के अध्ययन में कहा गया है कि *"चार केस स्टडीज़ में ऐसे ठोस तथ्यात्मक प्रमाण बहुत कम हैं जिनके आधार पर निजी और सार्वजनिक प्रबंधन की आर्थिक कार्यकुशलता की तुलना की जा सके।"*

लिहाज़ा, अन्य देशों के अनुभव से भी यह साफ है कि पानी के निजीकरण से दाम बढेंगे। अन्य पहलुओं के भी विस्तृत अध्ययन की जरूरत है। जैसे, गरीब घरों में पहुंच में वृद्धि, सेवा की गुणवत्ता और विश्वसनीयता आदि। यह निष्कर्ष भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि इस बात का कोई साफ प्रमाण मौजूद नहीं है कि निजी क्षेत्र बेहतर ही है। दोनों ही अध्ययन इस बात को रेखांकित करते हैं कि आम धारणा के विपरीत कुशल प्रबंधन वाली सार्वजनिक सेवाओं के भी कई उदाहरण हैं। गिनी व ब्यूनस आयर्स के उदाहरणों को विश्व बैंक वगैरह सफल उदाहरणों में गिनते हैं।

भारतीय तस्वीर (पुस्तिका प्रकाशन के समय)

भारत में जल प्रदाय का निजीकरण अभी शुरुआती दौर में है, पर यह बड़ा रूप लेने की तरफ कदम बढ़ा रहा है। विभिन्न चरणों में परियोजनाओं की संख्या इस तरह है: [9]

सेवा या प्रबंधन अनुबंध	10
पट्टे	5
रियायतें (तिरुपुर, विशाखापटनम, देवास, काकिनाडा, हैदराबाद)	5
बूट BOOT	20
विनिवेश	कोई नहीं

करीब 40 जल व दूषित जल उपचार परियोजनाएं और करीब 70 ठोस कचरा निपटान परियोजनाएं हैं। इनके बारे में टुकड़े-टुकड़े सूचना ही उपलब्ध है। लेकिन इतनी सूचना से भी पता चलता है कि अन्य जगहों के अनुभव से जो मुद्दे उठे हैं, वे यहां भी सामने आते जा रहे हैं। गौरतलब है कि यह तालिका पूरी नहीं है और चूंकि पूरी सूचना नहीं मिली है, इसलिए इसमें कुछ परियोजनाओं की ताज़ा जानकारी शायद न हो। (ये आंकड़े पुस्तिका प्रकाशन के समय के तथा एकदम शुरुआती हैं। आज एक दशक बाद पानी के निजीकरण की नीतियां और परियोजनाएं संख्या और दायरे के हिसाब से काफी आगे बढ़ चुकी है। पानी के निजीकरण से संबंधित ताज़ा आंकड़े और जानकारी मंथन की वेबसाईट पर देखी जा सकती हैं।)

जिन परियोजनाओं पर काफी काम हो चुका है, उनमें छत्तीसगढ़ की शिवनाथ नदी का निजीकरण, टिहरी बांध से गंगा नहर के ज़रिए दिल्ली को पानी आपूर्ति का अनुबंध और तिरुपुर परियोजना शामिल हैं।

शिवनाथ परियोजना दुर्ग (छत्तीसगढ़) के शहर के पास बोरई औद्योगिक क्षेत्र को जल आपूर्ति

के लिए है। इस परियोजना में शिवनाथ नदी के एक हिस्से को रेडियस वाटर लिमिटेड को सौंप दिया गया है। यह कंपनी एक स्थानीय व्यक्ति कैलाश सोनी की है। दो साल पहले उसे नदी पर एक बांध बनाने के लिए 'सरकारी रियायत' दी गई और 23.6 किलोमीटर लंबे जलाशय और इसमें संग्रहित पानी पर पूरा अधिकार दे दिया गया। इसमें आसपास के उद्योगों को जल आपूर्ति का एकाधिकार शामिल है। जब से बांध बना है, तब से गांव वाले पहले की तरह न तो नदी में मछली पकड़ पाते हैं, न घाटों का इस्तेमाल कर पाते हैं और न ही नदी से अन्य ज़रूरतें पूरी कर पाते हैं। वे नदी के लिए अब पूरी तरह सोनी की मर्ज़ी के गुलाम हैं। लोगों में गुस्सा भड़क उठा है और अब बहुत से जन संगठन बड़े पैमाने पर इसका विरोध कर रहे हैं। वे न सिर्फ लोगों के अधिकार छीने जाने की बात कर रहे हैं, बल्कि इससे जुड़े दूरगामी मुद्दे भी उठा रहे हैं। छत्तीसगढ़ सरकार अब राजधानी रायपुर के जलप्रदाय के निजीकरण पर विचार कर रही है और सोनी इस दौड़ में भी आगे-आगे है। छत्तीसगढ़ ने एक अंतर्राष्ट्रीय सलाहकार संस्था प्राइस वाटरहाउस कूपर्स (PWC) से पानी पर एक नीतिगत मसौदा बनाने को कहा था। यह मसौदा राज्य में पानी के ज़्यादा से ज़्यादा निजीकरण की सलाह देता है।

एक और मामले में फ्रांसीसी कंपनी डेग्रेमोन्ट (पानी क्षेत्र की एक विशाल कंपनी सुएज़ की साझेदार) को मुरादनगर (उत्तर प्रदेश) के पास से ऊपरी गंगा नहर से पानी लेकर दिल्ली पहुंचाने की रियायत दी गई है। यह रियायत 6250 लाख लीटर पानी प्रतिदिन की आपूर्ति के लिए है। खास बात यह है कि नहर में पानी टिहरी बांध से आएगा।[10] पाइप लाइन पर काम शुरू भी हो

फोटो: टॉम क्रूज़

अमेरिकी कंपनी को कोचाबम्बा के लोगों का दो टूक पैगाम

चुका है, और स्थानीय लोग इतनी ज़्यादा मात्रा में पानी मोड़ने का विरोध कर रहे हैं। उनका कहना है कि इससे उनकी खेती तबाह हो जाएगी, जो पहले ही पानी की कमी के चलते मुसीबत में है।[11] किसानों ने एलान कर दिया है कि वे किसी कीमत पर पाइप लाइन नहीं बिछने देंगें।

इन दो मामलों से ही पता चल जाता है कि पानी का निजीकरण देश में बहुत गंभीर सवाल खड़े करने वाला है। इससे उतने ही बड़े संघर्ष उठ खड़े होंगे, जैसे कि बड़े बांधों के सवाल पर पिछले दो दशकों में चले हैं।

" "अधिकांश समय तो वे मछली पकड़ते हैं, तो मैं अनदेखा कर देता हूं। साल में 6 महीने मैं उन्हें पानी का उपयोग भी करने देता हूं। मगर जनवरी से जून के बीच जब पानी कम होता है तब इस पर रोक होती है।' '

- कैलाश सोनी, उस कंपनी का मालिक जिसे शिवनाथ नदी के एक हिस्से का एकाधिकार मिल गया है।

निजीकरण की नीति को बढ़ावा देने वाली ताकतें

एडीबी का अध्ययन जो बात दूसरे देशों के बारे में कहता है, वे भारत पर भी लागू होती हैं। बेहतर व टिकाऊ सेवा के लिए यह मांग उपभोक्ताओं और सरकार की तरफ से नहीं उठ रही है। बल्कि इसे हवा दे रही हैं ऋणदाता संस्थाएं और ठेकेदार।

भारत सरकार द्वारा 1 अप्रैल 2002 को पारित नई जल नीति कहती है:

> *"जहां भी संभव हो, विभिन्न इस्तेमालों के लिए जल संसाधन परियोजनाओं के नियोजन, विकास और प्रबंधन में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ानी चाहिए। निजी क्षेत्र की भागीदारी से हमें नए-नए विचार लागू करने, वित्तीय संसाधन पैदा करने और कार्पोरेट प्रबंधन लागू करने तथा सेवा की कार्यकुशलता व उपभोक्ताओं के प्रति जवाबदेही बढ़ाने में मदद मिलेगी। परिस्थिति के अनुसार, जल संसाधन सेवाओं के निर्माण, स्वामित्व, संचालन व हस्तांतरण में निजी क्षेत्र की भागीदारी के विभिन्न मिले-जुले रूपों पर विचार किया जा सकता है।"*

इस नीति के विकास की कहानी दिलचस्प है। पिछले साल विश्व बैंक ने अपनी जल संसाधन क्षेत्र रणनीति (WRSS) की समीक्षा शुरू की थी। इसके तहत एक मसौदा बनाया गया था, जो भारत समेत बहुत सी सरकारों को दिया गया। अपेक्षा के अनुरूप, इस मसौदे में जल क्षेत्र के निजीकरण पर काफी जोर दिया गया था। इस मसौदे पर टिप्पणी करते हुए बैंक के भारतीय कार्यकारी निदेशक ने कहा था:

> *"अनुभव के आधार पर जितनी हो सकती है, इस मसौदे में उससे ज़्यादा महत्वपूर्ण भूमिका निजी क्षेत्र के लिए सोची गई है। आज तो अति विकसित बाज़ार अर्थ व्यवस्थाओं में भी जल और स्वच्छता के क्षेत्र में सार्वजनिक संस्थानों की प्रमुखता है। ...अनुभव बताते हैं कि जल प्रदाय योजनाओं के पूर्ण निजीकरण और रियायतों का अंत अक्सर असफलता में होता है.... ।"*

यह जनवरी 2002 की बात है। अप्रैल आते-आते यह चेतावनी ताक पर रखी दी गई और उपरोक्त नीति को मंज़ूर कर लिया गया। इतना ही नहीं, विभिन्न जल प्रदाय योजनाओं के निजीकरण के लिए बड़े पैमाने पर कोशिश की जा रही हैं।

वास्तव में विश्व बैंक, एशियाई विकास बैंक जैसी अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं व द्विपक्षीय ऋणदाता और ब्रिटेन की डिपार्टमेंट फॉर इंटरनेशनल डेवलपमेंट (DFID) जैसी एजेंसियां न सिर्फ पानी बल्कि भारत की समूची अर्थव्यवस्था के निजीकरण के लिए बेशर्मी से दबाव बना रही हैं।

एशियाई विकास बैंक (एडीबी)

जनवरी 2001 में एडीबी ने अपनी जल नीति पारित की। नीति पानी को " "सामाजिक रूप से ज़रूरी आर्थिक वस्तु' ' करार देती है। नीति इन लक्ष्यों को सामने रखती हैः

1. एडीबी के सदस्य विकासशील देशों में जल क्षेत्र के सुधारों को प्रोत्साहित करना।
2. जल संसाधनों के एकीकृत प्रबंधन को बढ़ावा देना।
3. जल सेवाओं को सुधारना और इनके वितरण के क्षेत्र को बढ़ाना।

नीति के अनुसार, जल सेवाओं के विस्तार का काम स्वायत्त व जवाबदेह सेवा एजेंसियों, निजी क्षेत्र की हिस्सेदारी और निजी-सार्वजनिक साझेदारी के ज़रिए किया जाएगा।

एडीबी की जल नीति की अन्य महत्वपूर्ण बातेंः

1. पानी का पुनर्वितरण '*पानी के हस्तांतरणीय अधिकारों के बाज़ार*' के ज़रिए '*ऊंचे मूल्य वाले उपयोगों*' की ओर किया जाएगा।
2. (सिंचाई और शहरी जल सप्लाई के लिए) जल सेवाओं को सुधारने के मुद्दे पर नीति कहती है कि " "*सरकारों की भूमिका सेवा प्रदाता से बदलकर नियमनकर्ता की हो जानी चाहिए*' ' और " "*उम्मीद यह है कि निजी क्षेत्र की पहलकदमियों और बाज़ारोन्मुख व्यवहार से कार्य निष्पादन और कार्यकुशलता में सुधार होगा*।' '[12]

इस नीति को लागू करवाने के लिए शर्तों का इस्तेमाल किया जा रहा है। एडीबी का कहना है कि *"एडीबी की नीति.....(के तहत) नए निवेशों की एक शर्त यह होती है कि जल क्षेत्र में सुधार लागू किए जाएं। एडीबी की सहायता प्राप्त करने के लिए ज़रूरी होगा कि सरकारें राष्ट्रीय जल नीतियां, कानून, संस्थागत सुधार, क्षेत्र समन्वय प्रक्रिया और पानी सम्बंधी कार्रवाई का एक राष्ट्रीय एजेंडा अपनाएं।"*[13]

कहना न होगा कि सुधार का मतलब निजीकरण और व्यापारीकरण है। एडीबी द्वारा दिए गए कई ऋणों से भी यही ज़ाहिर होता है।

डीएफआईडी व अन्य द्विपक्षीय एजेंसियां

ब्रिटिश सरकार का अंतर्राष्ट्रीय विकास विभाग उड़ीसा, मध्य प्रदेश व अन्य राज्यों में पानी के निजीकरण के लिए आक्रामक दबाव बना रहा है। गौरतलब है कि ब्रिटेन में कई बड़ी-बड़ी जल कंपनियां हैं, जो विकासशील देशों के बाज़ारों पर नज़रें गड़ाए बैठी हैं।

विश्व बैंक

पानी का पुनर्वितरण 'पानी के हस्तांतरणीय अधिकारों के बाज़ार' के ज़रिए 'ऊंचे मूल्य वाले उपयोगों' की ओर किया जाएगा।

विश्व बैंक की जल संसाधन क्षेत्र रणनीति (WRSS)[14] के मूल में साफ तौर पर जल संसाधन के निजीकरण की रणनीति है। इस रणनीति का मार्च 2002 का मसौदा कहता है "जल और स्वच्छता (के क्षेत्र) में विश्व बैंक समूह का प्रमुख जोर इस बात पर है कि लागत घटाकर और नए सेवा प्रदायकों के प्रवेश को आसान बनाकर गरीबों के लिए सुरक्षित, सस्ती जल-आपूर्ति व स्वच्छता सेवाओं तक पहुंच सुनिश्चित की जाए।

" इसका एक अहम हिस्सा यह है कि वित्तीय रूप से मज़बूत, कार्यकुशल और उपभोक्ता केन्द्रित जल व स्वच्छता सेवाओं के विकास को बढ़ावा दिया जाए। इसमें शामिल हैं: ...व्यापारोन्मुखी और ग्राहक केंद्रित सेवाओं का निर्माण ताकि सेवाएं निभने योग्य बन सकें; सरकार की सामर्थ्य बढ़ाना ताकि वह निजी कंपनियों के साथ सेवा प्रदाय के अनुबंध कर सके; जोखिमों के अनुरूप पारिश्रमिक का संतुलन; जल प्रदायकों की साख बढ़ाना ताकि वे (सुविधाओं के) पुनर्वास, विस्तार और उन्नत बनाने के क्षेत्रों में अरसे से रुके हुए निवेशों हेतु वित्त जुटा सकें; औसत दामों को धीरे-धीरे लागत के स्तर पर ले जाना ...।"

कुल मिलाकर, निजीकरण का पूरा पैकेज ही है यह। इसी दस्तावेज के अनुसार :

"पिछले सालों में एक महत्वपूर्ण बात यह रही है कि जल व स्वच्छता सेवाओं में निजी क्षेत्र की भागीदारी के लिए विश्व बैंक व आई.एफ.सी. का समर्थन बढता गया है। इस वक्त विश्व बैंक द्वारा मदद पाने वाली करीब 40 फीसदी शहरी जल व स्वच्छता परियोजनाओं में किसी न किसी रूप में निजी क्षेत्र की भागीदारी है।"

भारत में विश्व बैक ने जल क्षेत्र के विभिन्न हिस्सों पर पांच पुस्तकों की एक ृंखला निकाली है। ऊपरी तौर पर इन्हें विश्व बैंक, भारत सरकार व कुछ द्विपक्षीय ऋणदाताओं द्वारा जल क्षेत्र की साझा समीक्षा का नतीजा बताया जाता है। शहरी जल आपूर्ति व स्वच्छता और ग्रामीण जल आपूर्ति व स्वच्छता की रिपोर्टें[15] दरअसल इन क्षेत्रों में आमूल बदलाव लाकर इन्हें निजी व व्यापारिक हाथों में दे देने की योजना का खाका हैं।

विश्व व्यापार संगठन (WTO) और सेवाओं में व्यापार का आम समझौता (GATS)

डब्ल्यूटीओ और गैट्स (जनरल एग्रीमेन्ट ऑन ट्रेड इन सर्विसेज़) जल आपूर्ति व स्वच्छता के निजीकरण में जिस पैमाने पर भूमिका निभाने जा रहे हैं, उसके सामने विश्व बैंक और एडीबी बिल्कुल फीके पड़ जाते हैं।

हालांकि विश्व बैंक और एडीबी बडी बेशर्मी से निजीकरण को हवा दे रहे हैं और इसके लिए वे सहायता के साथ शर्तें थोपने से भी बाज़ नहीं आते, मगर तब भी वे संप्रभू राष्ट्र-राज्यों की अवधारणा की सीमा के भीतर ही काम कर रहे हैं। वे कहते हैं कि उनकी नीतियां तो स्वयं सरकारों से उभरती हैं और किसी पर थोपी नहीं जातीं। भारत के लिए विश्व बैंक की ग्रामीण जल

आपूर्ति व स्वच्छता रिपोर्ट की प्रस्तावना में बैंक के दक्षिण एशिया क्षेत्र के मुख्य अर्थशास्त्री जॉन विलियमसन कहते हैं:[16]

> *"यह देखकर अच्छा लगा कि भारतीय सहभागी रिपोर्ट की मुख्य बातों को पहले ही अपना चुके थे। यह विश्व बैंक के बारे में उस आम धारणा के एकदम विपरीत था कि बैंक पहले तय कर लेता है कि क्या करना है, आर फिर शर्तों के ज़रिए अपने निर्णय को थोपता है, और अंत में सरकार पर छोड़ देता है कि वह एक अनिच्छुक आबादी पर इसे थोपे। हालांकि यह आम धारणा एक धारणा ही है, बैंक के वास्तविक कामकाज की तस्वीर नहीं...।"*

कम से कम सिद्धांत रूप में विश्व बैंक व एडीबी सरकारों का यह अधिकार मंज़ूर करते हैं कि वे शर्तें ठुकरा दें। इसके अलावा वे अब भी मानते हैं कि वे यह सब गरीबी हटाने या विकास के लिए कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, विश्व बैंक का अप्रैल 2002 का निजी क्षेत्र विकास रणनीति दस्तावेज[17] इस तरह शुरू होता है:

> *"निजी क्षेत्र का विकास तरक्की को बढाने, गरीबी हटाने और लोगों को अपना जीवन स्तर सुधारने में मदद देने के लिए है।"*

लेकिन डब्ल्यूटीओ ऐसे बहाने नहीं बनाता। पहले वाक्य में ही डब्ल्यूटीओ अपना परिचय इन शब्दों में देता है:[18]

> *"संक्षेप में, विश्व व्यापार संगठन (ज़्ब्र्) अकेला ऐसा अंतर्राष्ट्रीय संगठन है जो राष्ट्रों के बीच व्यापार के वैश्विक नियमों के क्षेत्र में काम करता है। इसका प्रमुख काम यह सुनिश्चित करना है कि व्यापार जितना ज़्यादा संभव हो उतना सहज, पूर्व अनुमान के अनुरूप और मुक्त रह सके।"*

डब्ल्यूटीओ पूरी तरह व्यापार को बढावा देने और मुक्त व्यापार की राह का हर रोड़ा हटाने के प्रति समर्पित है।[19] चाहे ये रोड़े जनतांत्रिक ढंग से चुनी गई सरकार के राष्ट्रीय कानूनों व नीतियों के रूप में हों या फिर कई देशों द्वारा हस्ताक्षरित व अनुमोदित कानूनी तौर पर बंधनकारी अंतर्राष्ट्रीय संधियों द्वारा समुदायों या नागरिकों को हासिल बुनियादी अधिकारों के रूप में हों।

डब्ल्यूटीओ की इस निर्मम शक्ति का इस्तेमाल अब जल आपूर्ति के निजीकरण का दबाब बनाने में किया जा रहा है। सेवाओं में व्यापार पर आम समझौता (गैट्स) डब्ल्यूटीओ का वह हिस्सा है जो सेवाओं के क्षेत्र में लागू होता है। गैट्स के विस्तार के लिए समझौता वार्ता अभी चल रही है। पहले कदम के रूप में सभी देशों को अन्य देशों को यह बताना था कि वे उनके किन सेवा क्षेत्रों को व्यापार के लिए खुलवाना चाहते हैं और इसमें दूसरे देशों के किन कानूनों व अधिनियमों को बाधा के रूप में देखते हैं।

यह काम 30 जून 2002 तक किया जाना था। इसके बाद मार्च 2003[20] तक यह बताना था कि बदले में ये देश अपने यहां के किन क्षेत्रों को खोलने के लिए तैयार हैं। ये सारी सूचनाएं गोपनीय रखी गई हैं।

गैट्स के बारे में एक संस्था की वेब साइट कहती है:[21]

"सबसे पहले 1994 में कायम की गई डब्ल्यूटीओ की मौजूदा गैट्स व्यवस्था फिलहाल भी काफी विस्तृत और दूरगामी असर वाली है। मौजूदा नियम सेवा क्षेत्र में व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की राह में आने वाली सभी सरकारी बाधाओं को धीरे-धीरे हटाने के लिए बनाए गए हैं। गैट्स हर कल्पनीय सेवा को शामिल करता है। इसमें पर्यावरण, संस्कृति, प्राकृतिक संसाधन, पेयजल, स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा पर असर डालने वाली सेवाएं, परिवहन सेवाएं, डाक सेवाएं व स्थानीय निकायों की विभिन्न सेवाएं शामिल हैं। इसके नियम सेवाओं के व्यापार को प्रभावित करने वाले लगभग सारे सरकारी उपायों (श्रम कानूनों से लेकर उपभोक्ता संरक्षण तक) पर लागू होते हैं। इनमें नियमन, दिशा-निर्देश, सब्सिडी और अनुदान, लायसेंस सम्बंधी मापदण्ड और शर्तें, बाज़ार में पहुंच पर प्रतिबंध, आर्थिक आवश्यकता परीक्षण और स्थानीय सामग्री सम्बंधी प्रावधान शामिल हैं।"

इसका मतलब यह हुआ कि अभी चल रही गैट्स बातचीत के तहत ""सेवाओं के मुक्त व्यापार'' में बाधा डालने वाले किसी भी सरकारी दिशा निर्देश, नीति और कानून पर न सिर्फ रोक लगेगी, बल्कि उन्हें डब्ल्यूटीओ निर्देशों व प्रावधानों के अनुसार बदलना होगा। व्यवहार में इसका मतलब यह होगा कि सरकारी कानून व नियमन निरस्त कर दिए जाएं।

ज़रूरत की जांच

गैट्स सरकारी नियमों पर किस तरह की पाबंदियां लगाएगा? एक मुख्य प्रस्ताव तथाकथित 'ज़रूरत की जांच' का है। इसके तहत डब्ल्यूटीओ जांच करेगा कि कोई राष्ट्रीय कानून या नियमन (जो शायद संभवतः व्यापार पर पाबंदियां लगाने वाला हो) सचमुच कितना जरूरी है। इसका मतलब हुआ कि किसी कानून के उद्देश्य को पहले 'अवैध' मान लिया जाएगा। फिर यह प्रमाणित करने की जिम्मेदारी उस सरकार की होगी कि वह कानून सचमुच 'ज़रूरी' है और उस 'उद्देश्य' को हासिल करने का कोई दूसरा रास्ता नहीं है। ज़रूरत तय करने की कसौटी यह है कि इसे 'कम बाधक होना चाहिए।' कम बाधक देश की जनता के लिए नहीं बल्कि व्यापार के लिए। और इस पर फैसला कौन सुनाएगा? कोई अदालत या संसद नहीं बल्कि डब्ल्यूटीओ की विवाद निपटारा समितियां, जहां आम नागरिक या समुदाय को सुनवाई का या अपना पक्ष रखने का कोई अधिकार नहीं है। साफ तौर पर यह राष्ट्रों की संप्रभुता और लोगों के आत्म निर्णय के अधिकार पर डकैती है।

हालांकि ज़रूरत की जांच अभी गैट्स में प्रस्ताव रूप में ही है, लेकिन डब्ल्यूटीओ के दूसरे समझौतों और नाफ्टा (नार्थ अमेरिकन फ्री ट्रेड एग्रीमेंट) जैसी अन्य मुक्त व्यापार संधियों में यह पहले से मौजूद है। नाफ्टा में ज़रूरत की जांच से जुडी एक घटना से पता चलता है कि यह कैसे काम करता है। एक पत्रकार ने लिखा है:

"अमेरिका के कैलिफोर्निया राज्य ने गैसोलिन एडिटिव एमबीटीई पर रोक लगा दी थी, क्योंकि यह भूजल को प्रदूषित करता है। एडिटिव के कनैडियन निर्माता ने नाफ्टा के तहत इस आधार पर अमेरिका पर दावा ठोक दिया कि भूजल के प्रदूषण को रोकने के लिए

डब्ल्यूटीओ जांच करेगा कि कोई राष्ट्रीय कानून या नियमन सचमुच कितना ज़रूरी है।

रसायन पर रोक लगाना 'व्यापार में सबसे कम बाधक' उपाय नहीं है। कनैडियन कंपनी ने तर्क दिया कि कैलिफोर्निया गैस स्टेशनों की हज़ारों टंकियों को निकालकर उनकी मरम्मत करने और एक नया बडा निरीक्षण तंत्र खड़ा करने का रास्ता चुन सकता था। यदि कनाडा को इस प्रदूषक रसायन का निर्यात जारी रखने की अनुमति दी जाए तो इस विकल्प की अरबों डॉलर की लागत को देखते हुए कैलिफोर्निया को मजबूरन अपने भूजल की सुरक्षा को नज़रअंदाज़ करना पड़ेगा। कैलिफोर्निया नाफ्टा विवाद समिति के सामने ज़रूरत की जांच की कनाडा की व्याख्या के खिलाफ लड रहा है । लेकिन डब्ल्यूटीओ द्वारा प्रस्तावित भाषा में राज्य के पास बचाव के लिए कुछ नहीं होगा।'[22]

अगर गैट्स प्रस्ताव पारित हो गए तो ज़रूरत की जांच का नाफ्टा से भी ज्यादा कडा रूप लागू होगा, जो पानी क्षेत्र के नियमन के सरकार के अधिकार को बुरी तरह पंगु बना देगा। जब संसद के आदेश तक चुनौती की जद में होंगे, तो 73 वें व 74 वें संशोधनों के तहत ग्राम सभा या पंचायत या स्थानीय निकायों के अधिकार कहां लगते हैं!

देशी-विदेशी एक समान

डब्ल्यूटीओ के 'राष्ट्रीय सलूक' नियमों के प्रभावी हो जाने का अर्थ होगा कि विदेशी कंपनियों को भी स्थानीय कंपनियों की बराबरी पर रखना पड़ेगा। यानी सार्वजनिक सेवाओं के लिए आवंटित सरकारी धन बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भी मुहैया कराना होगा।[23]

बाज़ार तक असीमित पहुंच

गैट्स सरकारों को बाध्य कर देगा कि वे सामाजिक या पर्यावरण सम्बंधी प्रभावों की परवाह किए बगैर विदेशी सेवा प्रदाताओं को बाज़ारों में बेरोक-टोक पहुंच बनाने दे।[24] आज कम से कम हम बहस कर सकते हैं कि निजीकरण किया जाना चाहिए या नहीं अथवा किसी क्षेत्र को विदेशी कंपनियों के लिए खोला जाना चाहिए या नहीं। लेकिन एक बार गैट्स प्रस्ताव लागू हो गए, तो सारी बहस बेमानी हो जाएगी।

गैट्स में पानी सम्बंधी प्रस्ताव

जैसा कि अभी ज़िक्र किया गया, 30 जून 2002 तक सभी देशों को बताना है कि वे दूसरे देशों के कौन से सेवा क्षेत्र खुलवाना चाहते हैं। हाल ही में सेवाओं में व्यापार के उदारीकरण (गैट्स 2000) पर डब्ल्यूटीओ वार्ताओं के लिए युरोपीय आयोग द्वारा बनाए गये कुछ गोपनीय दस्तावेज लीक हुए हैं। इन दस्तावेजों में युरोपीय आयोग का एक प्रस्ताव शामिल है जिसके तहत वह भारत, दक्षिणी कोरिया, ब्राज़ील, मेक्सिको, कनाडा, जापान, अमेरिका समेत 29 डब्ल्यूटीओ सदस्य देशों में सेवाओं के व्यापार को प्रतिबंधित करने वाले कानूनों व नियमों को हटाने का अनुरोध करने वाला है। इन दस्तावेजों से पता चलता है कि युरोपीय आयोग सभी डब्ल्यूटीओ सदस्य देशों से पानी क्षेत्र (पानी संग्रहण, शुद्धिकरण, प्रदाय और अवशिष्ट जल शोधन सहित) को

अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा के लिए खोलने के लिए कहने वाला है। युरोपीय आयोग इन वार्ताओं में युरोपीय संघ के 15 सदस्य देशों का प्रतिनिधित्व करता है।[25]

यह कोई संयोग नहीं है कि पानी के क्षेत्र की सबसे बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियां इन्हीं देशों की है। इसमें भी कोई अचरज नहीं होना चाहिए कि जहां सामाजिक संस्थाओं, एनजीओ और जनता के विभिन्न तबकों को इन प्रस्तावों को तैयार करने की प्रक्रिया से दूर रखा गया, वहीं उद्योग जगत को इस पूरी प्रक्रिया में सहज पहुंच हासिल थी।

पानी के निजीकरण को बढावा देने में गैट्स की बडी भूमिका है और भविष्य की वार्ताएं निर्णायक होंगी। इस बारे में विवाद भी है कि जल आपूर्ति सेवाओं को गैट्स में शामिल किया जाए या नहीं। कुछ जानकारों का कहना है कि चूंकि इनका गैट्स की क्षेत्रवार वर्गीकृत सूची (डब्ल्यूटीओ की भाषा में W/120) में उल्लेख नहीं है, इसलिए जल आपूर्ति को गैट्स में शामिल नहीं होना चाहिए। लेकिन हमें लगता है कि गैट्स में 'सेवा' की परिभाषा इतनी व्यापक है कि जल आपूर्ति निश्चित रूप से इसके भीतर आ जाएगी। मल जल निकास, कचरा प्रबंधन और स्वच्छता सेवाओं को पहले ही पर्यावरण सेवाओं के वर्ग में शामिल कर लिया गया है। इसके अलावा क्षेत्रवार सूचियों में एक विषय को 'कहीं और शामिल न की गई अन्य सेवाएं' का शीर्षक दिया गया है। इससे सूची सर्व समावेशी हो जाती है। वैसे वार्ता के दौरान युरोपीय आयोग ने भारत व अन्य देशों में जल क्षेत्र खोलने का स्पष्ट अनुरोध करके इस बहस का पटाक्षेप कर दिया है।

लीक हुए दस्तावेजों से पता चलता है कि युरोपीय आयोग सभी डब्ल्यूटीओ सदस्य देशों से पानी क्षेत्र को अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा के लिए खोलने के लिए कहने वाला है।

लेकिन चिंता की बात यह है कि भारत, डब्ल्यूटीओ द्वारा बाध्य किए जाने के पहले ही, बहुत से क्षेत्रों को खोल रहा है और डब्ल्यूटीओ की मांग के अनुरूप अपने बहुत से कानूनों और नियमों को उदार बना रहा है। दूसरे शब्दों में, भारत सरकार डब्ल्यूटीओ के कहे बगैर ही इस पचडे में पड रही है। इसका चिंताजनक पहलू यह है कि इससे डब्ल्यूटीओ/गैट्स वार्ताओं में भारत की सौदेबाजी की क्षमता कमजोर पड़ जाएगी।

प्रेरणा स्रोत क्या है

निजीकरण को बढ़ावा देने के इन सभी प्रयासों के पीछे प्रेरणा स्रोत क्या है? जल क्षेत्र से मिल सकने वाला अकूत धन और मुनाफा ही इसके मूल में हैं। विश्व जल आयोग (WCW)[26] के अनुसार विकासशील देशों में जल क्षेत्र में फिलहाल प्रति वर्ष करीब 70 अरब अमेरिकी डॉलर का निवेश होता है (17 अरब डॉलर पनबिजली में, 28 अरब डॉलर जल व स्वच्छता में और 25 अरब डालर सिंचाई में)। विश्व जल आयोग के मुताबिक जल सुरक्षा हासिल करने के लिए 2025 तक इसे बढाकर 180 अरब डॉलर पर ले जाना होगा। इसका मतलब हुआ कि आज वार्षिक निवेश करीब 1,34,400 करोड़ रुपए है, जिसे ढाई गुना बढ़ाना होगा। इससे यह भी

" "गैट्स का अस्तित्व मात्र सरकारों के बीच नहीं है। प्रमुख रूप से यह कंपनियों के हितों का एक उपकरण है, और वह भी सामान्य कंपनियों के लिए नहीं बल्कि सेवाओं के निर्यात अथवा विदेशों में धन लगाने और कामकाज करने की इच्छुक कंपनियों के लिए।' '

युरोपीय आयोग के सेवाओं में विश्व व्यापार सम्बंधी 'इन्फो पॉइन्ट' से उद्धृत। इंटरनेट पर: http://gats-info.eu.int/index.html

अंदाज़ा लगता है कि इस व्यवसाय में कितना मुनाफा है।

अन्य जानकारों का अनुमान है कि दुनिया भर का जल सेवा व्यवसाय करीब 10 खरब अमेरिकी डॉलर प्रति वर्ष है।[27] कुछ लोगों का अनुमान तो 70 खरब डॉलर प्रति वर्ष तक का है।[28] सही आंकड़ा जो भी हो, यह साफ है कि पानी का बाज़ार भीमकाय है।

भारत के संदर्भ में भी अनुमान लगाए गए हैं। विश्व बैंक, ब्रिटिश एजेंसी DFID और भारत सरकार के शहरी मामले व रोज़गार मंत्रालय के अनुसार 29 शहरी जल व मल-जल तंत्रों को उन्नत बनाने के लिए आगामी सालों में काफी ज़्यादा निवेश की ज़रूरत होगी।[29] नवीं योजना अवधि (1997-2002) में यह रकम 30,200 करोड़ प्रति वर्ष तक हो सकती है (1996-97 की कीमतों पर)।

ग्रामीण जल आपूर्ति के लिए इसी तरह की एक संयुक्त रिपोर्ट ने आकलन किया है कि:

"ग्रामीण आबादी तक पूरी तरह पहुंचने और बिगड़ी हुई परियोजनाओं को सुचारू बनाने (जैसे मरम्मत या पुनर्वास) के लिए न्यूनतम 17 से 20 हज़ार करोड़ रुपए तक का कुल पूंजीगत निवेश चाहिए होगा। .....इस क्षेत्र में संचालन व रख-रखाव का एक समुचित स्तर बनाए रखने के लिए हर साल करीब 2900 करोड रुपए की ज़रूरत होगी।"[30]

बहुराष्ट्रीय कंपनियां कई हज़ारों करोड़ के इस बाज़ार और वार्षिक मुनाफे पर लार टपका रही हैं।

तेल जले सरकार का, मियां खेलें फाग

अलबत्ता, यह जरूरी नहीं है कि निजी कंपनिया खूब पैसा लगाने को तैयार हो जाएं, हालांकि वे भारी मुनाफा कमाने को मरी जा रही हैं। जो लोग भारत के बिजली क्षेत्र से परिचित हैं, वे जानते हैं कि 1991 के बाद से तथाकथित निजीकरण सार्वजनिक पैसे के दम पर ही हुआ है (या तो भारतीय या अंतर्राष्ट्रीय सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं के ज़रिए या फिर सार्वजनिक धन से चलने वाली राष्ट्रीय निर्यात साख एजेंसियों जैसी वित्तीय व गारंटी व्यवस्थाओं के ज़रिए)। इसका तर्क बिल्कुल आसान है - परियोजनाओं में सार्वजनिक पैसा लगने दो, जोखिम भी सार्वजनिक रहने दो मगर मुनाफा मिले निजी कंपनियों को। जल क्षेत्र में भी यही कहानी दोहराई जा रही है। विश्व बैंक स्वयं इस मुद्दे पर बिल्कुल साफ है। अपने जनवरी 2002 के जल संसाधन क्षेत्र रणनीति मसौदे

में विश्व बैंक कहता है:

"यह भी उतना ही स्पष्ट है कि जल संसाधन इन्फ्रास्ट्रक्चर के क्षेत्र में, कई कारणों से, निजी क्षेत्र अकेला नहीं उतर सकता और नहीं उतरेगा...।"

'कई कारणों' में से कुछ हैं:

"ज्यादातर जल इन्फ्रास्ट्रक्चर में धन वापसी की अवधि लंबी होती है जो पूंजी बाज़ार के साथ 'संगत' नहीं बैठती क्योंकि आम तौर पर पूंजी बाज़ार में परिपक्वता अवधि कम होती है। इसलिए गारंटी व्यवस्थाओं की ज़रूरत है ताकि लंबी अवधि के लिए पैसा उपलब्ध हो सके।"

यह मसौदा कहता है:

".....वर्तमान परिस्थितियों में निजी क्षेत्र 'पानी के क्षेत्र में इन्फ्रास्ट्रक्चर की वित्तीय खाई' को पाटने में सिर्फ गौण भूमिका निभाएगा। निजी क्षेत्र की भागीदारी का बाज़ार तैयार करने के लिए सार्वजनिक-निजी साझेदारी का ज़्यादा सहयोगी रवैया अपनाने की ज़रूरत है। इसमें विश्व बैंक की प्रमुख भूमिका है।"

जल सेवा क्षेत्र की सबसे बडी कंपनियों में से एक एस.ए.यू.आर. के मुख्य कार्यकारी जे.एफ. टेल्बोट ने अपने एक दिलचस्प भाषण में स्थिति को एकदम साफ कर दिया है।[31] विश्व बैंक में फरवरी 2002 में दिया गया यह भाषण दरअसल और ज़्यादा छूट पाने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों की गुहार है। उन्होने बाकी बातों के अलावा विश्व में जल निजीकरण के कई रूझानों के प्रति शिकायत की:

"सेवा के अयथार्थवादी स्तर पर ज़ोर"

"अनुबंध की अतर्कसंगत अड़चनें"

"अतर्कसंगत नियामक शक्ति व दखलंदाज़ी"

"विकासशील देशों में युरोपीय मानदंड लागू करने की कोशिशें"

"विकासशील देशों में सबके लिए कनेक्शन की मांग"

इसके बाद वे " "इन रूझानो के व्यापारिक प्रभाव ' ' के बारे में बात करते हैं:

"निजी बेलेंस शीट...पर ज़्यादा बोझ है"...

".....आक्रामक प्रतिस्पर्धा से कीमतें खतरनाक स्तर तक नीचे गिर रही हैं।"

इसके नतीजे में वे कहते है -

"विकासशील देशों में ..... निजी जल व्यापार को एक सीमित बाज़ार की ओर धकेला जा रहा है, इससे विकासशील देशों के गरीब बड़े घाटे में रहेंगे।"

"ज़्यादा निवेश हासिल करने के लिए जल व्यापार को और ज़्यादा आकर्षक बनाना होगा..."

उनके हिसाब से समाधान इस तरह है:

"...आवश्यक निवेश स्तर तक पहुंचने के लिए अच्छे खासे अनुदान और सुगम ऋणों से बचा नहीं जा सकता।"

"जोखिम को सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों के बीच नए सिरे से संतुलित करना होगा और पर्याप्त सुरक्षा देनी होगी।"

"सेवा के स्तर को स्थानीय संदर्भ के हिसाब से तय करना होगा।"

संक्षेप में समाधान का आशय यह है कि जोखिम सार्वजनिक क्षेत्र उठाएगा, सेवाओं का स्तर घटिया बना रहेगा और फिर भी निजी क्षेत्र सुगम ऋणों, अनुदानों की मांग करेगा ताकि अच्छा-खासा सुनिश्चित मुनाफा बटोर सके।

यानी निजी क्षेत्र और विश्व बैंक जैसे इसके हिमायती कह रहे हैं कि अभी हमारे लिए लागत और जोखिम बहुत ज़्यादा है, इसलिए कृपया हमें आश्वस्त कीजिए कि सार्वजनिक खज़ाना खुला रहेगा और लोग (सार्वजनिक संस्थाएं) सारा जोखिम संभालेंगे, और हम मुनाफा संभालेंगे। आजकल फैशन में चल रहे शब्द सार्वजनिक-निजी साझेदारी (PPP) का असली अर्थ यही है।

निष्कर्ष

दुनिया के दूसरे हिस्सों के अनुभव बताते हैं कि भारत में भी जलप्रदाय के निजीकरण के नतीजे खतरनाक होंगे। देश में निजीकरण के शुरुआती दौर में यह दिखाई देना भी शुरू हो गया है।

सबसे बड़ा असर तो गरीबों को झेलना पड़ेगा, जो व्यापारिक जल सेवाओं की पहुंच के दायरे से बाहर फेंक दिए जाएंगे। विश्व बैंक का जल संसाधन रणनीति मसौदा (मार्च 2002) भविष्य की ओर अपशकुनी संकेत भी करता है। यह कहता है :

".....सुधरी हुई सेवाएं हर मामले में... उन बाज़ार आधारित नियमों को आगे बढ़ाएंगी, जिनके तहत पानी का अधिकार स्वैच्छिक रूप से अस्थाई या स्थाई तौर पर कम पैसे वाले उपभोक्ताओं से ज़्यादा पैसे वाले उपभोक्ताओं को हस्तांतरित करना आसान हो जाएगा....."

ध्यान देने की बात यह है कि भारत जैसे देश में ज़्यादा पैसे वाले उपभोक्ताओं में गन्ने के खेत, गोल्फ मैदान, वाटर पार्क आदि शामिल हैं। पीने के लिए पानी तो कम पैसे वाला उपयोग ही है।

दूसरा बडा असर देश, समुदायों व नागरिकों की संप्रभुता पर पड़ेगा, क्योंकि मुट्ठी भर बहुराष्ट्रीय निगम देश के इस अहम संसाधन पर कब्ज़ा जमा लेंगे।

ज़बर्दस्त अंतर्राष्ट्रीय दबावों के चलते पर्याप्त व विश्वसनीय जल सेवाएं सुनिश्चित करने की वैकल्पिक व्यवस्थाओं (जैसे सामुदायिक स्वामित्व वाले जल प्रदाय) के लिए कोई जगह नहीं बचेगी।

यह विवाद का विषय है कि क्या बहुराष्ट्रीय कंपनियां इस देश की जनता के प्रति जबावदेह होंगी और पेयजल, पर्यावरण संरक्षण, पानी की गुणवत्ता और जन स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सेवाओं में जनता तक पहुंच जैसे मसलों पर इसका क्या असर होगा।

उतनी ही चिंता की बात यह भी है कि डब्ल्यूटीओ के कसते शिकंजे के चलते संसद द्वारा बनाए गए कानून, कार्यपालिका द्वारा बनाए गए नियम व विनियम और सरकारी नीतियां भी 'व्यापार को समस्त बाधाओं से मुक्त' करने की मांग के समक्ष जल क्षेत्र का नियमन नहीं कर पाएंगे। ऐसी हालत में 73 वें व 74 वें संशोधन के ज़रिए प्रदत्त अधिकारों का विकेंद्रीकरण और

स्थानीय स्वशासन कागज़ के शेर बनकर रह जाएंगे।

इस सबको देखते हुए यही निष्कर्ष निकलता है कि जल सेवाओं का निजीकरण तत्काल रोका जाना चाहिए और देश में इस मुद्दे पर और संभावित विकल्पों पर एक व्यापक बहस छेड़ी जानी चाहिए।

❑

टिप्पणियां और संदर्भ सूची

1. रियायत अनुबंध एक विशेष तरह का अनुबंध ही है।
2. Johnstone Nick, Wood Libby, Hearne Robert; *Regulation of Private Sector Participation in Urban Water Suppply and Sanitation: Realising Social and Environmental Objectives in Developing Countries*; IIED, London, Sept. 1999
3. उस समय बी.एस.ई.एस., ए.ई.सी. आदि निजी कंपनियां कार्यरत थीं, मगर इनकी संख्या बहुत कम थी।
4. उदाहरण के लिए महेश्वर पनबिजली परियोजना की लागत 465 करोड रुपए थी, पर निजीकरण के कुछ ही सालों में यह छलांग लगाकर 2200 करोड़ रुपए हो गई।
5. सांटा फे, न्यू मैक्सिको, अमेरिका में लेनन फाउडेशन में 18 सितंबर 2002 को दिए गए व्याख्यान से, फ्रंटलाइन में 17 अक्टूबर 2002 को प्रकाशित।
6. *Leasing the Rain: Letter from Bolivia*; William Finnegan, in The New Yorker, April 8, 2002.
7. *Privatization of Water Supplies in Ten Asian Cities*. A Study by A.C. McIntosh and C.E. Yniguez for the Asian Development Bank, January 2000
8. Johnstone Nick, Wood Libby, Hearne Robert; *Regulation of Private Sector Participation in Urban Water Suppply and Sanitation: Realising Social and Environmental Objectives in Developing Countries*; IIED, London, Sept. 1999
9. नाम न जाहिर करने की शर्त पर एक स्रोत ने बताया।
10. नवधान्य और रिसर्च फाउंडेशन फॉर साइंस, टेक्नॉलॉजी एंड इकॉलाजी, नई दिल्ली द्वारा आयोजित सम्मेलन में के. जलीस, नवधान्य का आलेख
11. उपरोक्त
12. एडीबी पर गैर सरकारी संगठनों के मंच के लिए वी.पी. कोराल व इ.जी. रिलेरा द्वारा तैयार की गई टिप्पणी '*हाईलाइट्स एंड अपडेट्स ऑफ एडीबी स्ट्रेटेजीज़ एंड पालिसीज़*' से।
13. 21वीं सदी में पानी-बदलते संदर्भ में एडीबी की बढ़ती भूमिका-एडीबी की विकासमान जल नीति।
14. यह रणनीति (WRSS) अभी अंतिम रूप लेने की प्रक्रिया में है।
15. World Bank, 1999, *Urban Water Supply and Sanitation*; Allied Publishers, New Delhi

16. World Bank, 1999, *Rural Water Supply and Sanitation*; Allied Publishers, New Delhi

17. विश्व बैंक की वेबसाइट www.worldbank.org पर उपलब्ध।

18. WTO की वेबसाइट www.wto.org. टिप्पणी का शीर्षक है *'The WTO in Brief'*.

19. कम से कम दिखावे के लिए। असल में कोशिश यह है कि कम धाक वाले देशों की कीमत पर अमेरिका व युरोपीय संघ जैसे शक्तिशाली देशों की राह में आने वाली बाधाएं हटाई जाएं।

20. जून 2002 व मार्च 2003 अंतिम समय सीमा नहीं बल्कि वांछित समय सीमा है।

21. www gatswatch.org में दी गई अपील *'गैट्स के हमले को तुरंत रोको'* से।

22. *The WTO's Hidden Agenda* by Greg Palast, Nov. 2001 -http://www.GregPalast.com

23. देखें 21

24. वही

25. *Proof of Controversial Nature of GATS Negotiations*, 16 July 2002 www.gatswatch.org.

26. विश्व बैंक जल संसाधन क्षेत्र रणनीति, मार्च 2002 के मसौदे में उद्धरित।

27. देखें 21

28. Confronting the Water Privatization Push, Dr. Sudhirendra Sharma, Deccan Herald, 24 April 2002

29. देखें 15

30. देखें 16

31. *'Is the Water Business Really a Business?'* Mr. J.F. Talbot. CEO Saur International, World Bank Water and Sanitation Lecture Series, 13 February 2002, http://www.worldbank.org/wbi/B-SPAN/docs/SAUR.pdf.

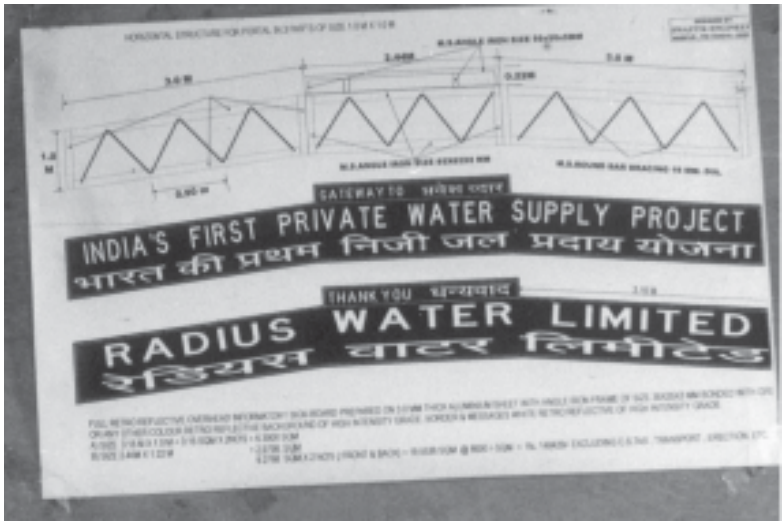

फोटो: अमन नम्र

फोटो टॉम क्रूस

इस पुस्तिका के बारे में

"जहां भी संभव हो, विभिन्न इस्तेमालों के लिए जल संसाधन परियोजनाओं के नियोजन, विकास और प्रबंधन में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ानी चाहिए। निजी क्षेत्र की भागीदारी से हमें नए-नए विचार लागू करने, वित्तीय संसाधन पैदा करने और कार्पोरेट प्रबंधन लागू करने तथा सेवा की कार्यकुशलता व उपभोक्ताओं के प्रति जवाबदेही बढ़ाने में मदद मिलेगी। परिस्थिति के अनुसार, जल संसाधन सेवाओं के निर्माण, स्वामित्व, संचालन व हस्तांतरण में निजी क्षेत्र की भागीदारी के विभिन्न मिले-जुले रूपों पर विचार किया जा सकता है।"

- भारत सरकार द्वारा 1 अप्रैल 2002 को पारित जल नीति से

- इस नीति के परिणाम क्या होंगे? क्या निजी क्षेत्र वह सब कर सकता है जिसका उल्लेख नीति में किया गया है? या क्या ये सब बड़े पैमाने पर पानी के निजीकरण को आगे बढ़ाने के बहाने हैं? इस पुस्तिका में ऐसी जानकारी प्रस्तुत की गई है जो देशवासियों को इन सवालों का जवाब देने में मदद करेगी।

- इस पुस्तिका में कई मुद्दों की चर्चा की गई है। जैसे, पानी क्षेत्र के कंपनीकरण और निजीकरण का बुनियादी स्वरूप, बिजली जैसे दीगर क्षेत्रों से इसकी समानता, दुनिया के मुख्तलिफ हिस्सों में पानी के निजीकरण के अनुभव, भारत में चल रहे या सोचे जा रहे निजीकरण के प्रयास, निजीकरण को बढ़ावा देने वाली ताकतें, खास तौर से विश्व बैंक, एशियाई विकास बैंक, विश्व व्यापार संगठन वगैरह।